राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक—पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

[सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ६३

रावराजा बुधसिंह हाडा कृत

नेहतरंग



राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

जोधपुर (राजस्थान)

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक—पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

[सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ६३

रावराजा बुधसिंह हाडा कृत

नेहतरंग

प्रकाशक

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

जोधपुर (राजस्थान)

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषानिबद्ध
विविध वाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावलि

प्रधान सम्पादक

पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

[ऑनरेरि मेम्बर ऑफ जर्मन ओरिएन्टल सोसाइटी, जर्मनी]

सम्मान्य सदस्य

भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर, पूना; गुजरात साहित्य-सभा, अहमदाबाद; विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान, होशियारपुर; निवृत्त सम्मान्य नियामक– (आनरेरि डायरेक्टर), भारतीय विद्याभवन, बम्बई।

ग्रन्थाङ्क ६२

रावराजा बुधसिंह हाड़ा कृत

नेहतरंग

प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

रावराजा बुधसिंह हाडा कृत

नेहतरंग

श्रीरामप्रसाद दाधीच, एम· ए.
व्याख्याता (हिन्दी-विभाग)
जसवन्त कॉलेज, जोधपुर

प्रकाशनकर्त्ता
राजस्थान राज्याज्ञानुसार
सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्द २०१८ | प्रथमावृत्ति १००० | भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८८३ | खिस्ताब्द १९६१ | मूल्य ४.००

मुद्रक—हरिप्रसाद पारीक, साधना प्रेस, जोधपुर.

RAJASTHAN PURATANA GRANTHAMALA

PUBLISHED BY THE GOVERNMENT OF RAJASTHAN

A series devoted to the Publication of Sanskrit, Prakrit, Apabhramsa, Old Rajasthani-Gujarati and Old Hindi works pertaining to India in general and Rajasthan in particular

*

GENERAL EDITOR

PADMASHREE JIN VIJAYA MUNI, PURATATTVACHARYA

Honorary Member of the German Oriental Society, Germany; Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona; Vishveshvarananda Vaidic Research Institute, Hosiyarpur, Punjab; Gujrat Sahitya Sabha, Ahemdabad; Retired Honorary Director, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay; General Editor, Gujrat Puratattva Mandira Granthavali; Bharatiya Vidya Series; Singhi Jain Series etc. etc.

* *

No. 63

NEHTARANG

Raoraja Budhsingh Hada of Bundi

* * *

Published

Undr the Orders of the Government of Rajasthan

By

The Director, Rajasthan Prachyavidya Pratishthana
(Rajasthan Oriental Research Institute)
JODHPUR (RAJASTHAN)

V. S. 2018]

[*1961 A.D.*

सञ्चालकीय वक्तव्य

प्राचीन कालमें राजस्थानके अनेक विद्याप्रेमी शासकों और अन्य समृद्ध व्यक्तियोंने विद्वानों तथा साहित्यकारोंको विशेष प्रश्रय एवं प्रोत्साहन प्रदान किया, जिसके परिणामस्वरूप राजस्थान साहित्य-क्षेत्रमें विशेष उन्नति प्राप्त कर सका है। ऐसे कुछ व्यक्तियोंने स्वयं भी साहित्यका निर्माण कर विद्वज्जगत्को अपनी साहित्यिक प्रतिभाका प्रत्यक्ष परिचय दिया है। ऐसे कवि-कोविदोंमें चौहानकुलोत्पन्न बूंदी-नरेश रावराजा बुधसिंहजी हाड़ाका नाम भी उल्लेखनीय है।

रावराजा बुधसिंहजी और इनकी काव्यकृति 'नेहतरंग' से विद्वज्जगत् अब तक प्रायः अपरिचित रहा है, क्योंकि हमारे साहित्यिक आलोचना-विषयक अनेक ग्रन्थ बहुधा बिना कड़ी जाँच-पड़ताल किये ही लिखे जाते हैं। ऐसे ग्रन्थोंमें प्रायः प्रचलित विषयोंकी पुनरावृत्ति मात्र होती है एवं अनेक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियों और उनके कर्त्ताओंके नाम तक छूट जाते हैं।

'नेहतरंग' काव्याङ्ग-निरूपण विषयक एक विशेष कृति है। रचनाकालके केवल १ वर्ष पश्चात् संवत् १७८५में लिखित इसकी एक प्राचीन प्रति श्रीरामप्रसादजी दाधीच, एम. ए. व्याख्याता, हिन्दी-विभाग, जसवन्त कॉलेज, जोधपुरने हमें बताई तो हमने राजस्थानके राजकुलीन साहित्यकारका विशिष्ट रीति-ग्रन्थ होनेके नाते इसे 'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला' में प्रकाशित करना सहर्ष स्वीकार कर लिया और प्राप्य प्रतियोंके आधार पर इस कृतिका सम्पादन-कार्य भी श्रीदाधीचजीको उनकी रुचि और योग्यता देखते हुए सौंप दिया। परिणामस्वरूप यह अद्यावधि अप्रकाशित कृति विद्वज्जनोंके हाथोंमें पहुँच रही है। विद्वान् सम्पादकने पाठान्तर और छन्दानुक्रमणिका देनेके साथ ही अपनी अध्ययनपूर्ण प्रस्तावनामें कृति-सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य प्रस्तुत किये हैं, जिनसे ग्रन्थकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है।

'नेहतरंग' के प्रकाशन-व्ययका अर्द्धांश भारत सरकारके वैज्ञानिक और सांस्कृतिक मन्त्रालयने 'आधुनिक भारतीय भाषा-विकास-योजना' के अन्तर्गत प्रदान करना स्वीकार किया है, तदर्थ हम भारत सरकारके प्रति आभार प्रदर्शित करते हैं।

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
जोधपुर.
गांधी जयन्ती (ता. २ अक्टूबर)
१९६१ ई.

मुनि जिनविजय
सम्मान्य सञ्चालक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जो ध पु र

(Rajasthan Oriental Research Institute)

JODHPUR.

उद्देश्य

१. राजस्थान में और अन्यत्र भारतीय संस्कृति के आधारभूत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी व अन्य भाषाओं में लिखित प्राचीन ग्रंथों की खोज करना तथा उन्हें प्रकाश में लाना।

२. प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह कर उनके संरक्षण की व्यवस्था करना और उपयोगी ग्रन्थों को सम्बन्धित विद्वानों से सम्पादित करा कर उनके प्रकाशन की व्यवस्था करना।

३. साधारणतः भारतीय एवं मुख्यतः संस्कृत व प्राचीन राजस्थानी के अध्ययन, अन्वेषण, संशोधन हेतु अत्यावश्यक उत्तम प्रकार का सन्दर्भ पुस्तक भंडार (मुद्रित ग्रन्थालय) स्थापित करना और उसमें देश-विदेश में मुद्रित विविध विषयक अलभ्य-दुर्लभ्य सभी ग्रन्थों का यथासंभव संग्रह करना।

४. संगृहीत सामग्री से शोधकर्त्ता अध्येता विद्वानों को उनके अध्ययन और अनुसंधान में सहायता पहुँचाना।

५. राजस्थान के लोक-जीवन पर प्रकाश डालने वाले विविध विषयक लोक-गीत, सांप्रदायिक भजन, पदादिक भक्ति साहित्य एवं सामाजिक संस्कार, धार्मिक व्यवहार तथा लौकिक आचार-विचार आदि से सम्वन्धित सभी प्रकार की सामग्री की शोध, संग्रह, संरक्षण, एवं प्रकाशन करने की व्यवस्था करना।

विषय-सूची

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला



ग्रन्थकार

वूंदीनरेश रावराजा वुधसिंहजी हाडा

[जन्म सं० १७५२ वि०; मृत्यु सं० १७९६ वि०]

(चित्र का ब्लाक श्री सुखवीरसिंहजी गहलोत, जोधपुर के सौजन्य से प्राप्त)

सम्पादकीय

राजस्थान की सांस्कृतिक और साहित्यिक धरोहर भी उतनी ही समृद्ध और गरिमामयी है जितनी इसकी वीर-परम्परा। दूसरे शब्दों में इस भाव को यों भी व्यक्त किया जा सकता है कि भारत की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परम्पराओं को इसका समान योगदान रहा है। यहाँ तलवार और लेखनी की साधना समानान्तर चली है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल और मध्यकाल को जो गरिमा और सम्पन्नता इस रसभूमि के सुकृती और यशस्वी कविर्मनीषियों ने प्रदान की है, इतिहास साक्षी है कि अन्य कोई प्रदेश ऐसा नहीं कर सका। किन्तु यहाँ यह कहने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं कि जिस प्रकार शस्य-श्यामला प्रकृति की अनुकम्पा से यह प्रान्त वंचित रहा है वहां हिन्दीभाषी विद्वानों तथा साहित्य के तथाकथित इतिहासकारों द्वारा की गई उपेक्षाओं का बोझ भी इसे कम नहीं उठाना पड़ा है। इन तथ्यों को मैं आगे लूँगा। यहाँ इतना ही संकेत करूँगा कि क्या राजस्थानी भाषा के पृथक् अस्तित्व की दृष्टि से और क्या यहाँ के साहित्यकारों के अस्तित्व की स्वीकृति की दृष्टि से—इस प्रदेश को जो न्याय और सम्मान मिलना चाहिये था वह नहीं मिला। भाषा, साहित्य, इतिहास, गवेषणा के ग्रंथ और अन्य खोज-रिपोर्टों (Search Reports) में उल्लिखित सामग्री में अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ यहां की डिंगल अथवा राजस्थानी भाषा और साहित्यकारों को लेकर विद्यमान हैं, किन्तु अब ज्यों-ज्यों निष्पक्ष अध्ययन और अनुसन्धान हो रहा है त्यों-त्यों सत्य उद्घाटित होने लगा है।

इस प्रदेश में साहित्य-सृजन का माध्यम दो भाषायें रही हैं—डिंगल और पिंगल। और दोनों ही में वीर, श्रृंगार, भक्ति (सगुण और निर्गुण), प्रेम, नीति और रीति की जो वेगमयी रस-धारायें बही हैं वे हमारी अक्षय निधि हैं। कुछ समय तक हिन्दी के विद्वानों की यह धारणा थी कि राजस्थान में मूलतः राजस्थानी अथवा डिंगल में ही साहित्य-सृजन हुआ है, किन्तु अधुनातन साहित्यिक गवेषणाओं ने यह प्रकट कर दिया कि इस प्रदेश में पिंगल में भी सृजन कम नहीं हुआ। डा० मोतीलाल मेनारिया कृत पुस्तकें, डा० सरनामसिंह शर्मा

'अरुण'[१], स्वामी नरोत्तमदास[२], डा. कन्हैयालाल सहल[३], डा. हीरालाल माहेश्वरी[४], श्री अगरचंद नाहटा प्रभृति विद्वानों की पुस्तकें और निबन्ध इस संवन्ध में पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं और यह निष्कर्ष निकलता है कि इस प्रान्त का पिंगल-साहित्य भी वहुत समृद्ध रहा है। डिंगल और पिंगल की साहित्यिक सर्जना के विस्तार में जाना यहाँ मेरा अभिप्रेत नहीं है। मेरे द्वारा सम्पादित प्रस्तुत कृति 'नेहतरंग', क्योंकि पिंगल में लिखी गई है इसलिये यह प्रसंग स्वाभाविक था।

पिंगल और डिंगल को लेकर आज भी कुछ अस्पष्टतायें साहित्य-क्षेत्र में प्रचलित हैं। 'नेहतरंग' की भाषा की मूल प्रकृति को समझने के लिए यह अनिवार्य है कि दोनों का अन्तर समझ लिया जाय। पिंगल का एक अर्थ छन्दःशास्त्र से भी लगाया जाता है। हमें इस अर्थ पर ध्यान नहीं देना है। आज पिंगल का सर्व-स्वीकृत अर्थ राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा है।[५] अस्तु यह स्पष्ट हो गया कि व्रजभाषा से तात्पर्य पिंगल से न होकर शुद्ध व्रजभाषा से है और पिंगल से तात्पर्य डिंगल अथवा राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा से है। डिंगल और पिंगल कतिपय सादृश्यों को लेकर सर्वथा पृथक् भाषा-भेद हैं, किन्तु दोनों की जन्मस्थली एक ही है और वह है राजस्थान। अव प्रश्न उठता है कि पिंगल शब्द का प्रचार कब से हुआ और इसे पिंगल सम्वोधन क्यों दिया गया ? इस विषय में की गई गवेषणाओं से अव यह स्पष्ट हो गया है कि १८ वीं शताव्दी से पिंगल इस अर्थ में प्रयुक्त होने लगी है। डिंगल शब्द पिंगल से वहुत प्राचीन है। यह प्राचीन ग्रंथों से प्रकट होता है। किन्तु जैसा कि मैंने पहले लिखा है, दोनों की जन्मस्थली एक रही है अतः दोनों में कतिपय सादृश्य भी हैं। दोनों के छन्दःशास्त्र और व्याकरण पृथक् होते हुए भी दोनों की मूल प्रकृति में, व्याकरण के नियमों में, शव्दकोप में, छन्दशास्त्र में समानताएँ हैं।[६] और इसका कारण शायद यही है कि दोनों का आदि-स्रोत एक (संस्कृत) है।

डिंगल और पिंगल के उपरोक्त परिचय के पश्चात् मैं राजस्थान में पिंगल साहित्य की परम्परा पर भी कुछ पंक्तियाँ लिखना चाहूँगा। जिस प्रकार

---

[१] राजस्थानी साहित्य, प्रगति और परम्परा।
[२] वेलि क्रिसन रुकमणी री महाराज पृथीराज री (भूमिका)।
[३] वीर-सतसई (भूमिका)।
[४] राजस्थानी भापा और साहित्य।
[५] राजस्थान का पिंगल साहित्य—डा० मेनारिया, पृ. सं. १३, १४, १५।
[६] राजस्थान का पिंगल साहित्य, डा. मेनारिया, पृ. सं. १३, १४, १५।

डिंगल में चरित्र-काव्य, पौराणिक-काव्य, भक्ति-काव्य, रीति-काव्य, नीति-काव्य और स्फुट काव्य की बड़ी ही स्वस्थ परम्परा रही है, उसी के समान यहाँ पिंगल में भी उपरोक्त सभी धाराओं में काव्य-सृजन हुआ है। पृथ्वीराज रासौ, खुमाण रासौ, राजविलास, सुजानचरित्र, वंशभास्कर आदि पिंगल के ही चरित्र-काव्य हैं। अवतारचरित्र, वीरविनोद, पिंगल के पौराणिक प्रवन्ध काव्य हैं। राजस्थान में भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति भी पिंगल कवियों ने वड़े ही कौशल के साथ की है। श्री नरहरिदास कृत अवतार-चरित्र, प्रतापकुंवरि कृत रामगुणसागर राम-भक्ति के काव्य हैं। राजस्थान के पिंगल भाषा के कवि कृष्णदास पयोहारी और मीराँबाई अष्टछाप कवियों के समकालीन थे। भक्त कवि नागरीदास, हितवृन्दावनदास, व्रजनिधि आदि भी पिंगल के कृष्णभक्तिकाव्य में अपना अपूर्व स्थान रखते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ निर्गुण भक्ति की भी अनन्य धारा बही है। दादू-पंथ, चरणदासी पंथ, रामस्नेही पंथ आदि के अनुयायी संत-महात्माओं की वाणियों के रूप में निर्गुण भक्ति का अजस्र स्रोत वहा है और वह सब हमारे सन्त-साहित्य की अमर निधि है। नीति काव्य में कवि वृन्द की 'वृन्द-सतसई' अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक पिंगल कवि हुये हैं, जिन्होंने नीति-सम्बन्धी मार्मिक सूक्तियों की रचना की है।

पिंगल में सबसे अधिक परिमाण और गुणात्मकता में जो साहित्य राज-स्थान में लिखा गया, वह है यहां का रीति-काव्य। रीति-काव्य-निर्माण की परम्परा डिंगल में भी रही है, किन्तु उसका आधार भी संस्कृत और प्राकृत-अपभ्रंश काव्य ही रहा है। यहां पिंगल में रचित रीतिकाव्य का मूल आधार तो संस्कृत और प्राकृत-अपभ्रंश का साहित्य ही है, किन्तु समकालिक हिन्दी रीति-आचार्यों का प्रभाव और अनुसरण भी स्पष्ट है। पिंगल के कतिपय कवियों पर डिंगल के रीति-काव्य का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। उन्होंने डिंगल छन्दःशास्त्र के लोकप्रसिद्ध छन्दों का और काव्य के अन्य उपादानों का प्रयोग अपनी प्रतिपादन शैली में किया है।

पिंगल में रीतिकाव्य लिखने वाले राजस्थान के पहले कवि जान थे।[1] यह जाति के मुसलमान थे। वि० सं० १६७१--१७२१ इनका रचना-काल माना जाता है। यह बहु-भाषा-विज्ञ थे और कहते हैं कि इन्होंने संस्कृत, अरवी, फारसी, पिंगल आदि भाषाओं में कुल ७५ ग्रंथों की रचना की। इनकी पिंगल

---

[1] राजस्थान का पिंगल सहित्य।—डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० सं० ८०।

में लिखी रीति-काव्य की कृतियों में रसकोश, कविवल्लभ, रसमंजरी और रस-तरंगिनी प्रसिद्ध हैं। जान के बाद रीति-काव्य लिखने की परम्परा बड़ी तीव्र अवस्था में मिलती है। राजस्थानी साहित्य के उत्तर मध्यकाल में जो वि० सं०-१७००–१९०० तक माना जाता है अक्षुण्ण रूप से रीति-ग्रंथ लिखे जाते रहे। विद्वानों के मतानुसार पिंगल में रीति-ग्रंथ लिखने वाले चालीस से अधिक कवि-आचार्य हुये हैं और उनके ६० से अधिक रीति-ग्रंथ आज प्राप्त हैं। महाराजा जसवन्तसिंह, कुलपति मिश्र, सोमनाथ, दलपतिराय-वंशीधर, कविराजा मुरारीदान, मंडन भट्ट, पद्माकर आदि ऐसे कवि-आचार्य इस प्रदेश में हुए हैं जिनकी कृतियों ने न केवल पिंगल को ही गौरवान्वित किया है अपितु सम्पूर्ण हिन्दी वाङ्मय इनसे समृद्ध है।[1]

प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता बूंदी के हाडा रावराजा बुधसिंह इन्हीं कवि-आचार्यों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। यद्यपि संख्या की दृष्टि से इन्होंने कोई विपुल काव्य-निर्माण नहीं किया। प्रस्तुत कृति 'नेहतरंग' के अतिरिक्त इनके द्वारा रचित किसी अन्य कृति का प्रमाण नहीं मिलता। हां, स्फुट छन्द इन्होंने अवश्य लिखे।[2] किन्तु पिंगल के रीति-काव्य में इनके नाम को अमर करने के लिये यह एक ही कृति पर्याप्त है, ऐसी मेरी मान्यता है।

नेहतरंग—

मैंने 'नेहतरंग' के सम्बन्ध में पहली बार डा० मोतीलाल मेनारिया की पुस्तकों (राजस्थान का पिंगल साहित्य और राजस्थानी भाषा और साहित्य) से सूचना प्राप्त की। अब तक यह अप्रकाशित कृति रही है अत: बाजार में इसकी उपलब्धि का तो प्रश्न ही नहीं था। फिर संयोग ऐसा हुआ कि मेरे एक कविता-प्रेमी विद्यार्थी श्री सीताराम सोनी (प्रथम वर्ष, बी० ए०) को इसकी एक प्रति कहीं से प्राप्त हुई। वे इसे मेरे पास ले आये। इसके अवलोकन पर मुझे लगा कि इसका प्रकाशन होना चाहिये और तब मैंने इसे राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान के उपसंचालक विद्वद्वर श्रीयुत् गोपालनारायणजी बहुरा को दिखाया। पुस्तक का वर्ण्यविषय, प्रतिपादन शैली, कर्ता की राजस्थानीयता और प्रति की रचनाकाल से निकटता को देख कर उन्होंने भी इसे उपादेय पाया और मुझे उन्होंने इसके सम्पादन का भार सौंप दिया।

---

[1] राजस्थान का पिंगल साहित्य।—डा० मेनारिया।

[2] राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार।—हिन्दी साहित्य परिषद्, जयपुर।

इसी सम्पादन के दौरान में मुझे इस पुस्तक की अन्य ४-५ प्रतियों को देखने का अवसर भी मिला। डा० मोतीलाल मेनारिया के मतानुसार राजस्थान के विभिन्न स्थानों पर इसकी ५० से अधिक प्रतियाँ मौजूद हैं।[१] प्रयास करने पर भी मैं ४-५ प्रतियों से अधिक का पता नहीं लगा सका। अपने इस सम्पादन में मैंने अपनी प्रति [क] के अतिरिक्त दो अन्य प्रतियों का उपयोग किया है। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

प्रति [ख]—यह प्रति मुझे आदरणीय श्री अगरचन्द नाहटा से प्राप्त हुई। इसका लिपिकाल ज्येष्ठ कृष्णा १, वि० सं० १९०१ है। इस प्रति के अनुसार 'नेहतरंग' का रचना काल वि० सं० १७८४ है—

सतरह सै चौरासिया, नवमी तिथि शनिवार।
शुकल पक्ष भादों प्रगट, रच्यौ ग्रंथ सुखसार॥

इसमें कुल ५३६ छन्द हैं और सम्पूर्ण विषय सामग्री १४ तरंगों में विभक्त की गई है।

प्रति [ग]—यह प्रति मुझे राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की जयपुर शाखा में सुरक्षित स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायणजी बी० ए० के विद्याभूषण ग्रन्थ-संग्रह से प्राप्त हुई। इसमें भी छन्द संख्या ५३६ ही है और इसका लिपिकाल वि० सं० १८०२ है।

डा० मोतीलाल मेनारिया ने अपनी पुस्तक 'राजस्थान का पिंगल साहित्य' में नेहतरंग का संक्षिप्त परिचय दिया है। इस प्रति में उन्होंने छन्द संख्या ४४६ ही बताई है और उसका लिपिकाल वि० सं० १७९७ माना है। मेरे मित्र प्रो० नरेन्द्र भानावत (राजकीय डिग्री कॉलेज, बूंदी) से मुझे एक और भी प्रति की सूचना मिली। यह प्रति बूंदी निवासी श्री कांतिचन्द्र भारद्वाज के निजी संग्रहालय में है। इस प्रति का लिपिकाल श्रावण कृष्णा त्रयोदशी गुरुवार वि० सं० १८११ है।

उपरोक्त सभी प्रतियों में लिपिकाल की दृष्टि से मेरी अपनी प्रति सबसे प्राचीन है। इसका लिपिकाल मिति आषाढ़ कृष्णा ७ वि० सं० १७८५ है। पुस्तक की रचना के करीब १० मास पश्चात् ही यह प्रति तैयार करली गई, ऐसा मेरी प्रति के अन्त में दी गई पुष्पिका से प्रमाणित होता है। अस्तु, यह प्रति अधिक आधिकारिक भी मानी जानी चाहिये। इसकी लिपि और वर्तनी भी

---

[१] इस विषय में मुझे लिखा गया उनका व्यक्तिगत पत्र।

अन्य प्रतियों से अधिक सुन्दर, स्पष्ट और शुद्ध है। अधिक काल की हो जाने के कारण जीर्णता इसमें अवश्य आ गई और १-२ पृष्ठ भी इसमें नहीं मिले। कई स्थलों पर कीटों ने भी इसे क्षत-विक्षत कर रखा है। अतः [ख] और [ग] प्रतियों से छन्दों की पूर्ण संख्या देने और पाठान्तर प्रस्तुत करने में मैंने सहायता ली है।

'नेहतरंग' एक रीतिकाव्य है। इसका वर्ण्य-विषय रस, नायक-नायिका, हाव-भाव, छन्द और अलंकार है। शास्त्रीय भाषा में इसे 'अनेकांग निरूपक' कृति कहेंगे। पहले एक छन्द में किसी एक काव्यांग के लक्षण दिये गये हैं और फिर नीचे किसी दूसरे छन्द में उसका उदाहरण दिया गया है। कृति के सम्पूर्ण वर्ण्य-विषय को कवि-आचार्य रावराजा बुधसिंह ने १४ तरंगों में विभक्त किया है। वह इस प्रकार है—

प्रथम तरंग	अनुकूलादि नायक पद्मन्यादि नायिका-निरूपण।
दूसरी ,,	चतुर विधि दरसन निरूपण।
तीसरी ,,	नायका मुग्धा-मध्या-प्रोढ़ा-धीरादि भेद निरूपण।
चौथी ,,	अष्ट नायिका निरूपण।
पांचवीं ,,	मिलन-स्थान निरूपण।
छठी ,,	सखीजन कर्मचेष्टा स्वयंदूती निरूपण।
सातवीं ,,	मान-मोचन विधि निरूपण।
आठवीं ,,	प्रवास विरह निरूपण।
नवीं ,,	भाव हाव निरूपण।
दसवीं ,,	रस निरूपण।
ग्यारहवीं ,,	चतुरविधि कवित्त वृत्ति पंचविधि अनरस कवित्त निरूपण।
बारहवीं ,,	छह ऋतु निरूपण।
तेरहवीं ,,	पिंगल मत छन्द निरूपण।
चौदहवीं ,,	अलंकार निरूपण।

जेसा कि मैंने ऊपर व्यक्त किया है रावराजा बुधसिंह पिंगल के कवि-आचार्यों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। अनुवर्ती परिच्छेदों में अपनी मति के अनुसार मैं इनकी काव्यकला का अनुशीलन प्रस्तुत करने की चेष्टा करूँगा।

आचार्य बुधसिंह

बूंदी का राज-परिवार शताब्दियों से साहित्यानुरागी रहा है। बूंदी के नरेशों ने दो प्रकार से साहित्य की सेवा की है—एक, अपनी सृजन-प्रतिभा से

साहित्य का कोश अभिवृद्ध करके और दूसरे कवियों को राज्याश्रय देकर।[1] रावराजा बुधसिंह के अतिरिक्त राव विष्णुसिंह हाड़ा (वि० सं० १८३०) और राव हनुमन्तसिंह हाड़ा (वि० सं० १८८२) ने डिंगल और पिंगल दोनों में उच्चकोटि का साहित्य सृजन किया। कहते हैं राव विष्णुसिंह ने वीर, भक्ति और श्रृंगार भावना के दस हजार से भी अधिक छन्द बनाये।[2] इस राज-परिवार में डिंगल, पिंगल और व्रजभाषा के अनेक लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों को आश्रय भी प्राप्त हुआ। डूंगरसी, पद्माकर, मतिराम, चंडीदान, भोजमिश्र, बदनजी, निश्चलदास, सूरजमल मिश्रण, मुरारीदान और गुलाबजी राव जैसे कवि और आचार्य बूंदी के राज्याश्रय में रहे हैं। संस्कृत और व्रज-भाषा के अत्यन्त ख्यातिप्राप्त कवि श्री कृष्ण भट्ट और भोज मिश्र स्वयं रावराजा बुधसिंह के कई वर्षों तक आश्रय में रहे।[3] बूंदी के राज्य परिवार की साहित्य-परम्परा जब यह रही है तो उसमें रावराजा बुधसिंह का होना कौनसे आश्चर्य की बात है ?

बुधसिंह का सांगोपांग साहित्यिक जीवन-वृत्त आज भी प्राप्त नहीं है। हिन्दी साहित्य के प्राचीन इतिहास-ग्रंथों[4] तथा हस्तलिखित ग्रंथों की खोज-रिपोर्टों[5] में इनके बारे में जो भी सामग्री प्राप्त है वह इतनी अपर्याप्त और भ्रान्तिपूर्ण है कि इनके साहित्यिक व्यक्तित्व के सम्बन्ध में निश्चित धारणा बनाना कठिन है। कहीं पर इन्हें बुध, कहीं पर बुधराव और कहीं पर बुधजन लिखा गया है। श्री श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा सम्पादित तथा काशी

---

१ (क) राजस्थान का पिंगल साहित्य, राजस्थानी भाषा और साहित्य।—डा० मेनारिया।
(ख) राजस्थानी साहित्य, प्रगति और परम्परा।—डा० अरुण।
(ग) राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार। हिन्दी साहित्य परिषद्, जयपुर।

२ राजस्थान का पिंगल साहित्य।—डा० मेनारिया, पृ० सं० १६०।

३ ईश्वर-विलास (भूमिका)।—पं० मथुरानाथ भट्ट।
रा० प्रा० वि० प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा प्रकाशित। पृ० सं० ४१-४२।

४ (१) मिश्रबन्धु विनोद। भाग ४, पृ० सं० ५३-५४।
(२) हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास।—डा० ग्रियर्सन, पृ० सं० ११६।
(३) शिवसिंह सरोज।—ठा० शिवसिंह।

५ (१) राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज।—श्री अगरचन्द नाहटा।
(२) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, प्रथम भाग।
सम्पादक—श्यामसुन्दरदास, पृ० १०२।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित खोज रिपोर्ट[1] में तो इनकी नेहतरंग पुस्तक को किसी चन्द्रदास कवि द्वारा रचित बताया गया है। यहाँ तक कि रावराजा बुधसिंह द्वारा रचित 'नेहतरंग' के १-२ छन्द भी[2] चन्द्रदास की नेहतरंग के नाम पर दिये गये हैं। यह भ्रान्ति संभवतः पद्य की तीसरी पंक्ति में 'चन्द्रहास' को 'चन्द्रदास' पढ़ लेने से हुई है। इससे ठीक विपरीत 'राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार' (हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जयपुर अधिवेशन के अवसर पर प्रकाशित) पुस्तक में बुधसिंह की 'नेहतरंग' को 'नेहनिधि' लिखा गया है।

जब परिस्थितियाँ यह रही हैं तो किस प्रकार कवि-आचार्य का समग्र साहित्यिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया जाय ? हिन्दी साहित्य के आधुनिक और सर्वथा मान्यता-प्राप्त इतिहास ग्रंथों में इनका नामोल्लेख भी नहीं हुआ। दुर्भाग्य की पराकाष्ठा तब होती है जब रीतिकाल और रीतिकाव्य के अधिकारी पण्डित डा० नगेन्द्र द्वारा रीतिकाल और रीतिकाव्य पर लिखी पुस्तकें तथा उनके द्वारा सम्पादित काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सद्यः प्रकाशित इतिहास ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' (षष्ठ भाग) भी बुधसिंहजी की उपेक्षा करते हैं।[3] बहिःसाक्ष्य की यह अवस्था है और अन्तःसाक्ष्य के रूप में कवि ने अपने बारे में कहीं एक भी पंक्ति नहीं लिखी।

---

[1] The Second Terrinial Report on the Search for Hindi Manuscripts (1906, 1907, 1908) Note No. 38, Page No. 70, 71, 72.

[2] निम्नांकित छन्द चन्द्रदास कृत नेहतरंग में भी बताये गये हैं जबकि यह श्री बुधसिंहजी की नेहतरंग में विद्यमान हैं—

(१) मदन-मोदकर- वदन सदन वेताल-जाल-व्रत।
भक्त-भीत-भंजन अनेक जिन असुर-वंस-हृत।
चन्द्रहास कर चंड चंडमुंडादि-रुहिरमय।
अनलझालजुत भाल लाललोचन बिसाल जय।
जय जय अर्चित गुन-गान-अगम, आत्मसुख चैतन्यमय।
जय दुरतिहरण दुर्गा जननि, राजति नवरस रूपमय॥

(२) काजर के परसान चढ़ी जु बढ़ी अंखियां भृकुटी चढ़ि वाढ़ी।
गात गुराई के रूप भईं सु करी चढ़ि लूटि नितंवनि च्राढ़ी।
आइ अचानक दीठि वरी, सु वही मग कंज कलिन्दि के ठाढ़ी।
चंपकसी किधो चन्द्रिकासी, मनों चन्द्रते चीर चीराकसी काढ़ी॥

पृ० सं० ७०, ७१, ७२।

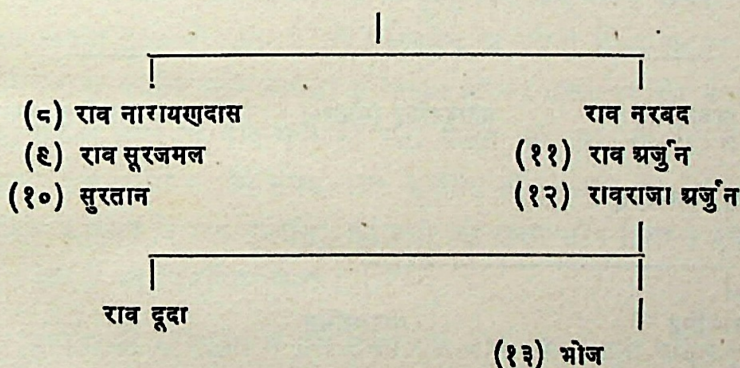
[3] रीतिकाव्य की भूमिका।—डा० नगेन्द्र।
देव और उनकी कविता।—डा० नगेन्द्र।
हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षष्ठ भाग)।—डा० नगेन्द्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

अस्तु जो कुछ सामग्री रावराजा बुधसिंह के सम्बन्ध में प्राप्त है वह उनके इतिहास-पुरुष और योद्धा जीवन के सम्बन्ध की है तथा राजस्थान के इतिहास पर लिखी पुस्तकों में उपलब्ध होती है। हमें भी परिणामस्वरूप इनके जीवन-वृत्त के लिये इतिहास-ग्रंथों[1] का ही आश्रय लेना पड़ा है।

रावराजा बुधसिंह का जन्म वि.सं. १७५२ में बूंदी में ही हुआ। इनके जन्म और मृत्यु संवत् को लेकर इतिहासकारों में कोई विवाद नहीं है। यह राव अनिरुद्धसिंह के जेष्ठ पुत्र थे। नीचे दिए गए बूंदी राज्य के वंशवृक्ष से यह स्पष्ट है—

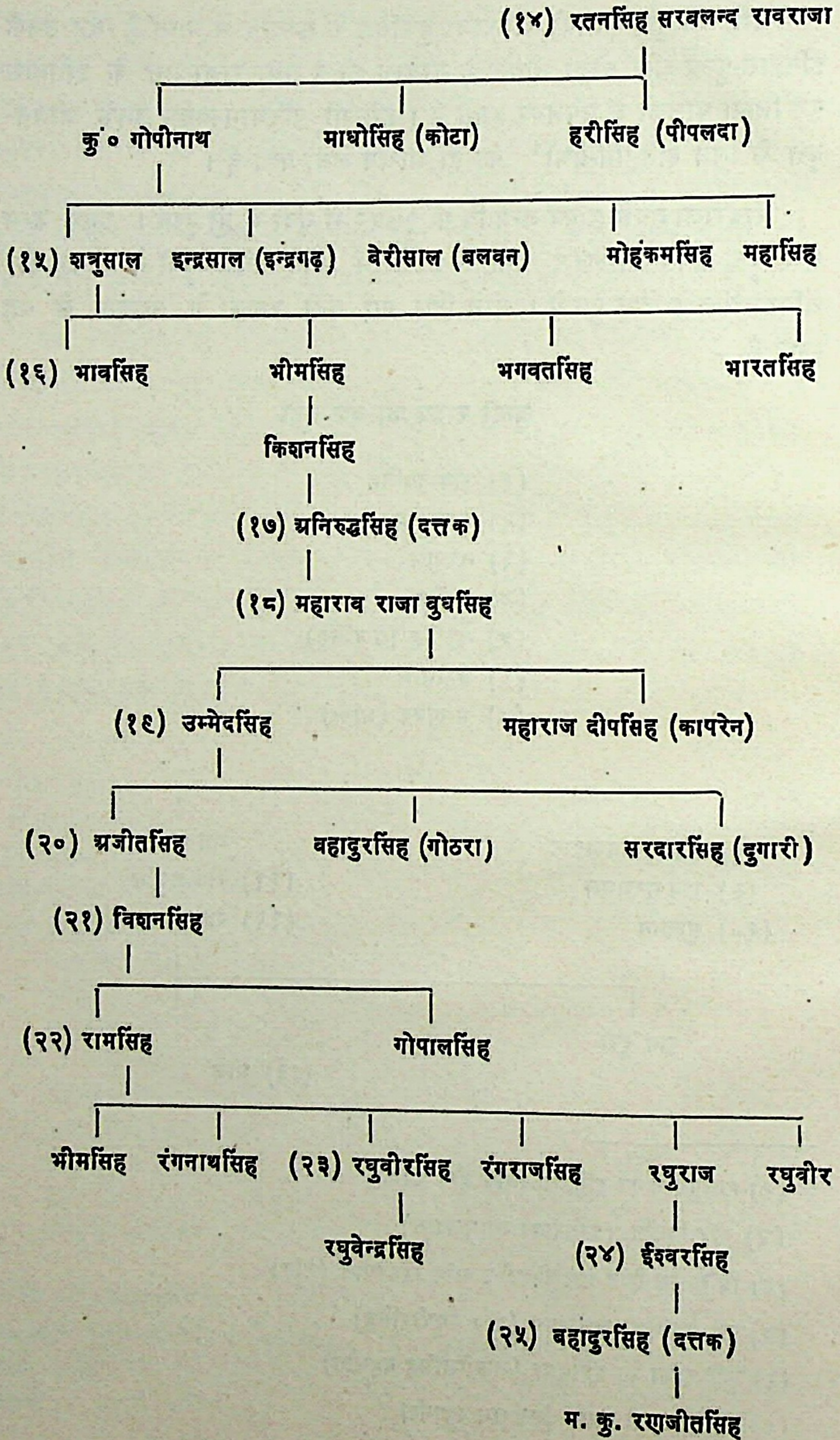
बून्दी राज्य का वंश वृक्ष

(१) राव देवसिंह
(२) समरसिंह
(३) नरपाल
(४) हम्मीर
(५) बरसिंह (वीरसिंह)
(६) बैरीसाल
(७) भाणदेव (भांडा)



---

१ (१) राजपूताने का इतिहास (गौ० ही० ओझा)
(२) वीर विनोद (कविराजा श्यामलदास)
(३) दि एनल्स ऐण्ड एन्टीक्विटीज ऑव राजस्थान (टॉड)
(४) पूर्व आधुनिक राजस्थान (डा० रघुवीरसिंह)
(५) बूंदी राज्य का इतिहास (जगदीशसिंह गहलोत)
(६) बांकीदास री ख्यात (नरोत्तम स्वामी)


(१४) रतनसिंह सरबलन्द रावराजा
कु॰ गोपीनाथ
माधोसिंह (कोटा)
हरीसिंह (पीपलदा)
(१५) शत्रुसाल
इन्द्रसाल (इन्द्रगढ़)
बेरीसाल (बलवन)
मोहकमसिंह
महासिंह
(१६) भावसिंह
भीमसिंह
भगवतसिंह
भारतसिंह
किशनसिंह
(१७) अनिरुद्धसिंह (दत्तक)
(१८) महाराव राजा बुधसिंह
(१९) उम्मेदसिंह
महाराज दीपसिंह (कापरेन)
(२०) अजीतसिंह
बहादुरसिंह (गोठरा)
सरदारसिंह (डुगारी)
(२१) विशनसिंह
(२२) रामसिंह
गोपालसिंह
भीमसिंह
रंगनाथसिंह
(२३) रघुवीरसिंह
रंगराजसिंह
रघुराज
रघुवीर
रघुवेन्द्रसिंह
(२४) ईश्वरसिंह
(२५) बहादुरसिंह (दत्तक)
म. कु. रणजीतसिंह

जोधसिंह, अमरसिंह और विजयसिंह रावराजा बुधसिंह के छोटे भाई थे। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् केवल १० वर्ष की आयु में ही यह बूंदी के राजसिंहासन पर आसीन हुये। उस समय दिल्ली के तख्त पर औरंगजेब आसीन था। राजस्थान की समस्त रियासतों ने मुगल-शासन का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया था। बूंदी रियासत भी कोई अपवाद नहीं थी। बूंदी के हाड़ा-नरेशों पर तो औरंगजेब की विशेष कृपा थी। बहुत कम आयु में ही यह औरंग-जेब की इच्छानुसार शाहजादे बहादुरशाह आलम के साथ काबुल में रहने लग गये थे। यह बहुत ही स्वाभिमानी थे और हाड़ावंश का पवित्र रक्त इनकी शिराओं में प्रवाहित था। कहते हैं, एक बार काबुल में किसी मुसलमान सरदार ने इन्हें अनुचित वचन कह दिये थे। इन्होंने उसी स्थल पर कटारी से उसका अन्त कर दिया।

औरंगजेब उन दिनों अस्वस्थ था और दक्षिण में औरंगाबाद में विश्राम कर रहा था। उसका अन्तकाल निकट देख कर अधिकारियों ने उससे निवेदन किया कि वह अपना कोई उतराधिकारी मनोनीत कर दे। औरंगजेब ने उत्तर दिया—"यह खुदा ताला के हाथ में है। उसकी इच्छा है कि बहादुरशाह आलम तख्त पर बैठे[1]।" किन्तु औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उसके लड़कों में तख्त के लिए झगड़ा हुआ और आजम, जो औरंगजेब का सब से छोटा लड़का था, अपनी षड़यंत्रकारी प्रवृत्ति और नीचता में सफल हो कर तख्त पर बैठ गया। उसने बूंदी सूचना भेजी कि यदि बूंदी की रक्षा चाहते हो तो अपनी सेना लेकर दिल्ली चले आओ। उस समय राव बुधसिंह तो काबुल में थे, परिणामतः आजम ने कोटा के राव रामसिंह को बूंदी का राज्य सौंप दिया। उसे महाराव की पदवी से भी विभूषित किया।

बुधसिंहजी के जीवन में उस समय एक और दुखद घटना घटित हुई। उनके छोटे भाई जोधसिंह जो इतिहास में एक शूरवीर, साहसी और पराक्रमी के रूप में उल्लिखित हैं, का एक दुर्घटना में अचानक देहान्त हो गया। वे गणगौर के त्यौहार पर अपनी पत्नी सहित जैतसागर (बूँदी का एक सरोवर) में नौकानयन कर रहे थे। किसी उन्मत्त हाथी ने इनकी नौका उलट दी और वे अपनी पत्नी-

---

१ दि एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑव राजस्थान।

—टॉड। पृ० सं० ३९०, ९१, ९२, ९३, ९४।

सहित डूब कर स्वर्गवासी हो गये।[1] अपने भाई के इस अनायास दुखद अन्त ने बुधसिंहजी को बड़ा गहरा आघात पहुँचाया। आलम ने इन्हें बूंदी जाकर अपने मृत भाई के अन्तिम संस्कार करने के लिए कहा, किन्तु तब आजम बहादुरशाह आलम को युद्ध के लिए ललकार चुका था। परिस्थिति बड़ी नाजुक थी। बुधसिंहजी में बहादुरशाह आलम के प्रति अटूट विश्वास था। सच्चा राजपूत यों भी कभी विश्वासघात नहीं करता। बुधसिंहजी ने अपनी इस क्षति की मर्मान्तिक पीड़ा को भुला कर एक योद्धा के स्वर में उत्तर दिया "मेरा कर्तव्य इस समय बूंदी के लिये मेरा आह्वान नहीं कर रहा, अपितु धौलपुर की रण-स्थली में अपने स्वामी की सेवा करने का आह्वान कर रहा है—उस धौलपुर की भूमि में जो अनेक युद्धों के लिये इतिहास में प्रसिद्ध है और अपने कर्तव्य के प्रदर्शन में जहाँ अनेक वीरों ने अपने प्राणों की आहुतियाँ देकर उस भूमि को अपनी स्मृतियों का एक तीर्थस्थल बना दिया है[2]।"

यहाँ यह स्मरण रखना है कि तब बुधसिंहजी की आयु केवल १२ वर्ष की थी। आलम इस वीरतापूर्ण उत्तर को सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। बुधसिंहजी ने इस अवसर पर यह भी कहा, "इसी रणभूमि में मेरे पूर्वज शत्रुसाल ने वीरगति प्राप्त की है। मैं उनकी कीर्ति को अक्षय करना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है कि भगवान् की कृपा से विजयश्री हमारे हाथ लगेगी।[3]"

अन्ततः धौलपुर के निकट 'जाजोव' की युद्धभूमि पर आजम और आलम की सेनाएँ तख्त के उत्तराधिकार का निर्णय करने के लिये एकत्र हुईं। आलम के पक्ष में जयपुर, जोधपुर और कोटा की सेनाएँ थीं और आजम की सहायता के लिये कोटा, दतिया और दक्खन से सेनाएँ आईं। आजम का पुत्र बेदरबख्त भी अपने पिता के साथ था।

जेम्स टॉड ने अपने इतिहास ग्रंथ के Annals of Haravati (Bundi) अध्याय में लिखा है कि यह युद्ध बड़ा रोमांचकारी था। इस युद्ध में राजपूताने के राजाओं का पारस्परिक वैमनस्य और उनके चारित्रिक पतन का प्रदर्शन भी

---

१ बूंदी राज्य का इतिहास (श्री जगदीशसिंह गहलोत)।—पृ० सं० ७८।
दि एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑव राजस्थान। टॉड। पृ० सं० ३९२, ९३।
[इसी घटना के फलस्वरूप राजस्थान की यह कहावत प्रचलित हुई—
"हाडो ले डूब्यो गणगौर"।]

२ दि एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑव राजस्थान। टॉड।

३ " " ।—पृ० सं० ३९३।

हुआ। क्षुद्र प्रलोभन में पड़ कर राजा लोग किस प्रकार न्याय और मानवीय मूल्यों को भूल जाते थे—यह युद्ध इसका साक्षी है।

कोटा के राजा रामसिंह औरंगजेव की स्मृति तथा आलम के साथ विश्वासघात कर इस युद्ध में आजम की ओर से लड़ रहे थे। इन्होंने बुधसिंहजी के पास एक सूचना इस आशय की भेजी कि तुम आलम का साथ छोड़ कर आजम के पक्ष में आ जाओ अन्यथा तुम्हें वहुत हानि उठानी पड़ेगी। वीर बुधसिंहजी ने अपने उच्च चरित्र के अनुकूल बहुत उपयुक्त उत्तर भिजवाया, "मैं कायर नहीं हूँ। जिस युद्ध-भूमि पर मेरे पूर्वजों ने वीरगति प्राप्त कर हाड़ा वंश की कीर्ति को अक्षय रखा है, उस स्थान पर मैं अपने मित्र का साथ छोड़ अपनी कुल-कीर्ति को कलंकित करना नहीं चाहता एक वीर का यह धर्म नहीं है।"[1]

युद्ध हुआ—वहुत ही विकट। बुधसिंहजी ने इस युद्ध में जिस वीरता का प्रदर्शन किया उसका उल्लेख प्रसिद्ध कवि दूलह ने एक छन्द में इस प्रकार किया है—

जुद्ध जाजऊ के वुद्ध ये सक्रुध उध,
आजम के महावीर काटि डारे नजासे से।
हेक कवि 'दूलह' समुद्र वढ़े श्रोनित के,
जुग्गिन परत फिरैं जंबुक अजासे से॥
एक लीन्हे सीस खाय, वेष ईस एकन को,
एकन को उपमा निहारी मनु उदासे से।
अध फरे फैलि फैलि कर में विराजे मानों,
माथे सुभट्टनके तरासे तरबूजा से॥

एक दूसरे कवि रूपसहाय ने जो सम्भवतः बूंदी के ही थे, इस युद्ध में दिखाई गई बुधसिंहजी की वीरता का वर्णन इस प्रकार किया है—

जाड़ीसी में पकरि हज़ारी मारों हांक हांक,
देखोजी तमासो वीर बूंदी के दीवान को।
बारैही बरस के बजाय लोह छोह कियो,
हाड़ा चहुवान पृथ्वीराय के ननमान को॥
कहै 'रूपसहाय' जाकों आलम सलाम करे,
देखत तमासो रथ रुक गयो भान को।

---

१ दि एनल्स एण्ड ऐंटीक्विटीज ऑव राजस्थान। टॉड। पृ० सं० ३९१, ९२, ९३, ९४।
बूंदी राज्य का इतिहास। श्री जगदीशसिंह गहलोत।—पृ० सं० ७८।

याही विधि अनर अमानो राव बुधसिंह,
खंजर सो फारि डारो पिंजर पठान को ।।

× ×

रहत अछक्क पै मिटै न धक पीवन की,
निपट जुनागी डर काहू के डरै नहीं ।
भोजन बनाये नित चोखे खान खानन के,
श्रोनित पचावे तऊ उदर भरै नहीं ।।
उगलित आसो सोऊ शुकल समर बीच,
राजे राव बुधकर विमुख परै नहीं ।
तेग या तिहारी मतवारी की अचक जौलौं,
... ... गजराजन को गजक करै नहीं ।।

उपरोक्त छंद बुधसिंहजी के वीर चरित्र पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं । निदान आजम की सेनायें रणखेत रहीं । कोटा के राव रामसिंह और दतिया के राजा दलपत भी इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त कर गये । आजम का पुत्र भी बुधसिंहजी की तीक्ष्ण तलवार के घाट उतर गया । आलम का विजयलक्ष्मी ने वरण किया और वह दिल्ली के तख्त पर आसीन हुआ । यह सफलता अकेले बुधसिंहजी के भुज-बल का प्रमाण थी—सभी इतिहास ग्रंथ इसके साक्षी हैं ।

बुधसिंहजी की इस वीरता और वफादारी पर आलम का प्रसन्न होना स्वाभाविक था । उसने इन्हें महाराव राजा की पदवी से विभूषित कर ५४ परगने भेंट किये । कोटा भी उनमें से एक था । बुधसिंहजी ने बूंदी के सरदारों को यह आदेश दिया कि वे कोटा पर अपना अधिकार करलें । आज्ञानुसार मोकमसिंह, जोगीराम आदि ने कोटा पर आक्रमण किया किन्तु वे सफल नहीं हुये । कोटा के राव भीमसिंहजी ने कोटा बचा लिया और बूंदी और कोटा की शत्रुता और भी प्रगाढ़ हो गई ।

बुधसिंहजी के जीवन में और भी अनेक दुखद घटनायें घटीं । बहादुरशाह आलम की सन् १७१२ में मृत्यु हो गई । यह घटना भी इनके लिये महान् कष्टदायी थी । अपने परम मित्र आलम का अभाव इन्हें जीवन भर खलता रहा । आलम की मृत्यु के पश्चात् फरुखसायर तख्त पर बैठा, किन्तु बुधसिंहजी राजगद्दी समारोह में सम्मिलित नहीं हुए । इस पर बादशाह बहुत नाराज हुए और उन्होंने कोटा के महाराव को बूंदी का राज्य दे दिया । यह घटना भी बड़ी पीड़क थी । बुधसिंहजी को अपना राज्य पुनः प्राप्त करने का शीघ्र ही अवसर मिला । फरुखसायर और उसके प्रधान मंत्री सैय्यद बन्धुओं में अनबन हो गई । सैय्यद बन्धु महाराव भीमसिंह से मिल कर बादशाह की हत्या का षड़यंत्र रच

रहे थे। बुधसिंहजी ने तब बादशाह का साथ दिया और उन्हें बादशाह ने प्रसन्न कर बूंदी का राज्य दे दिया।

फरुखसायर और सैय्यद बन्धुओं में जो अनबन प्रारम्भ हुई थी, उसका अन्त आखिर फरुखसायर की मौत के साथ हुआ। अब बूंदी नरेश बुधसिंह और आमेर नरेश सवाई जयसिंह का दिल्ली के शाही दरबार में प्रभाव नहीं रहा। सैय्यद बन्धु भी इन्हें प्रभावहीन करना चाहते थे। सैय्यद बन्धुओं ने महाराव भीमसिंह को बूंदी का पुनः अधिकार दिलवा दिया। जब तक भीमसिंह जीवित रहे तब तक बूंदी पर कोटा का ही अधिकार रहा। राव बुधसिंहजी अपने ससुराल आमेर में सब ओर से निराश होकर रहने लगे।

भीमसिंहजी की मृत्यु के पश्चात् अपने साले सवाई जयसिंह की सहायता से उन्होंने पुनः बूंदी पर अधिकार कर लिया। तभी एक और दुखद घटना घटी[1], जिसने साले और बहनोई के स्नेह-सूत्रों में स्थायी व्यवधान पैदा कर दिया।

बुधसिंहजी ने कुल चार विवाह किये थे (उदयपुर, जयपुर, बेगूँ (मेवाड़) और भिणाय (अजमेर)। इनका प्रथम विवाह महाराजा सवाई जयसिंह की बहिन अमरकुँवरी के साथ हुआ था। यद्यपि अमरकुँवरी की मँगनी पहले बहादुरशाह से हुई थी किन्तु बादशाह ने प्रसन्न होकर अपने मित्र बुधसिंहजी से इसका विवाह करा दिया। इस कछवाही रानी के कोई सन्तान नहीं थी। बेगूं की चूंडावत रानी से इनके दो राजकुमार थे अतः कछवाही रानी बड़ी अप्रसन्न रहती थी और ईर्ष्या की अग्नि में जलती रहती थी।

कुछ इतिहास ग्रंथों में ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि नित्यनाथ नामक किसी कनफटे जोगी के उपदेश तथा पुरोहित गजमुख की प्रेरणा से बुधसिंहजी वाममार्गी बन गये थे। कछवाही रानी क्योंकि वैष्णव धर्मानुयायिनी थी, अतः उसे यह सब बुरा लगा। उसने एक षड़यंत्र रचा। संभव है यह षड़यंत्र न होकर सत्य भी हो। उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसने यह कहा—यह बुधसिंहजी का अंश है। इस पर बुधसिंहजी ने उसका बड़ा अपमान किया।

सवाई जयसिंह अपना और अपनी बहिन का अपमान कैसे सहन करते ? बूंदी पर अधिकार के लिये पुनः युद्ध हुआ। जयसिंह की सेनाओं को सफलता मिली। बूंदी फिर बुधसिंहजी के हाथ से चली गई।

---

१ (१) बूंदी राज्य का इतिहास, श्री गहलोत। पृ० सं० ८०।
(२) दि एनल्स एण्ड ऐंटीक्विटीज ऑव राजस्थान, टॉड। पृ० सं० ३९३।

बुधसिंहजी के हृदय पर इन घटनाओं का बड़ा गहरा असर हुआ। एक प्रकार की उपेक्षा और वैराग्य-प्रवृत्ति का उनमें उदय होने लगा—अनन्त निराशा उनमें क्रियाशील हो उठी। किन्तु राजपूत का शौर्य्य और साहस उनमें समाप्त नहीं हुआ। परिस्थितियों से वे यों परास्त नहीं हुये और उन्होंने अन्यायी के समक्ष, चाहे वह उनका रिश्तेदार भी था, कभी मस्तक नहीं झुकाया।

वे अब अपने ससुराल बेगूं में रहने लगे थे। सवाई जयसिंह ने करवड़ के सरदार सालमसिंह के पुत्र दलेलसिंह को वि० सं० १७८६ में बूंदी की राज्यगद्दी सौंप दी। अपने सम्बन्धों को प्रगाढ़ करने के लिये अपनी पुत्री का विवाह भी उनके साथ कर दिया।

बुधसिंहजी अन्त तक बूंदी पर अपना अधिकार बनाये रखने के लिये सक्रिय रहे। उनकी चूंडावत रानी ने भी उनकी सहायता की।

इतिहास में ऐसा प्रमाण मिलता है कि राजस्थान में मराठों का सर्व प्रथम प्रवेश बूंदी की प्रेरणा से ही हुआ। इसके लिये कौन उत्तरदायी है ? क्या बुधसिंहजी ? क्या उनकी चूडावत रानी ? उत्तर स्पष्ट है—राजस्थान की तत्कालीन कुटिल राजनीति। दलेलसिंह के भाई प्रतापसिंह, जो अपने भाई से क्रुद्ध था, के निवेदन और प्रेरणा पर, मल्हार राव होल्कर तथा राघोजी सिन्धिया की सेनाओं ने बूंदी पर आक्रमण किया और बूंदी पुनः जयपुर के हाथ से चली गई। किन्तु मराठों के जाने के पश्चात् पुनः सवाई जयसिंह की सेनाओं ने बूंदी पर आक्रमण कर दलेलसिंह को राजसिंहासन पर बैठा दिया।

उपरोक्त सारा घटना-क्रम यह सिद्ध करता है कि बुधसिंहजी का जीवन कभी शान्ति और विश्राम का नहीं रहा। जीवन के अन्तिम १० वर्ष वे अपने ससुराल बेगूं में ही रहे। इनके साले रावत देवीसिंहजी ने इनकी बहुत ही सहायता की। उनके प्रति अपनी कृतज्ञता स्वयं बुधसिंहजी ने राजस्थानी भाषा में रचे अपने दोहे में इस प्रकार व्यक्त की है—

धर पलटी पलट्यो धरम, पलट्यो गोत निशंक।
देवा हरिचंद राखियो, अधिपतियां सिर अंग॥

अपने मानसिक आघातों को विस्मृत करने के लिये जीवन के अन्तिम काल में वे मदिरा और अफीम का अत्यधिक सेवन करने लगे। कहते हैं कि इन मादक द्रव्यों के अति प्रयोग से वे अन्त में पागल हो गये और वैशाख कृष्णा ३ वि० सं० १७९६ को उनका अवसान हो गया। श्री० गौ० ही० ओझा के मतानुसार (उदयपुर राज्य का इतिहास) बेगूं से ६ मील दूर बाघपुरा में इनका देहान्त हुआ।

रावराजा बुधसिंहजी के जीवन और चरित्र को लेकर विभिन्न इतिहासकारों में विभिन्न प्रतिक्रियायें हुई हैं। डा० रघुवीरसिंह ने अपने ग्रंथ 'पूर्व आधुनिक राजस्थान' में इन्हें 'मदिरा और अफीम के नशे में चूर रहने वाला एक दुर्व्यसनी और आलसी शासक' कहा है। विद्वान् लखक के पास इस कथन के क्या प्रमाण रहे हैं, कह नहीं सकते। संभव है जयपुर राज्य के अभिलेख-संग्रहालय से उन्हें ऐसी सामग्री मिली हो, किन्तु टॉड, ओझा, कविराजा श्यामलदास, सूर्यमल्ल मिश्रण, मुंशी देवीप्रसाद और गहलोत आदि ने कहीं पर भी ऐसा उल्लेख नहीं किया।

सूर्यमल्ल मिश्रण ने अपने ऐतिहासिक महाकाव्य वंशभास्कर में[1] बुधसिंहजी की प्रशस्ति में इस प्रकार लिखा है—

"इम लियउ बुद्ध पट्टाभिषेक,
थपि राज्यअंग बसि हुकम एक।
सित रोमगुच्छ ढरि दुदिस सीस,
कनकातपत्र भूषित महीस ।। २०
आवाप तंत्र चिंतन उपेत,
सुभ बल विदग्ध-धी सख-समेत।
पभटु संधि यान बिग्रह बिलास,
द्वैधाऽऽसन आश्रय गुन प्रकास।
प्रभु मंत्र-शक्ति उत्साह पूर,
सम चतरुपाय सामर्थ्य मूर।
सबिचार ब्यसन सप्तक निषेधि,
बानैत बान बिन लेत बेधि।
विधि च्यार हेति कोविद-विनोद,
चतुरंग चक्र साधन समोद।
जुत धर्म्म नीति अवसर जमाय,
लोकानुराग नयरीति लाय।
इत्यादि रागगुन जोर जग्गि,
बुधसिंह वढ़िय जनु अनिल अग्गि।
हुव बिदित क्षित्ति दिस दिसन हाक
अकि बाकि अराति रुकि बद न वाक।

---

१ वंशभास्कर (बुद्धसिंह चरित्र प्रकरण)—पृष्ठ २८९९–२९०० सूर्यमल्ल मिश्रण।

उपरोक्त वर्णन केवल कवि-उक्ति ही नहीं है। यह एक इतिहासकार की वाणी भी है। वंशभास्कर ऐतिहासिक सन्दर्भ-ग्रंथ भी माना जाता है। बुधसिंहजी एक उच्च-चरित्रवान शासक, वीर योद्धा और साहित्यानुरागी व कारयित्रि प्रतिभा के व्यवित थे, इसका प्रमाण उनके यहाँ आश्रय-प्राप्त संस्कृत और ब्रजभाषा के प्रकाण्ड विद्वान् तथा कवि श्री कृष्णभट्ट[1] की कृतियों में विद्यमान अंशों से मिलता है। संस्कृत भाषा में रचित अपनी पद्यमुक्तावली[2] में श्री भट्टजी ने बुधसिंहजी का प्रशस्ति-गान इस प्रकार किया है—

"देव श्रीबुद्धसिंह त्वदसिजलधरोल्लासिसत्कीर्तिनीरे,
तुङ्गप्राच्यादितीरे भवसरसि भवत्साधुवादोर्मिसंघे।
नक्षत्राण्येव हंसाः परिलसितनभोनीलिमा शैवलाघः,
पूर्णेन्दुः पद्ममस्मिन्, मधुरमधु सुधा, देववृन्दा मिलिन्दाः॥

[हे देव श्री बुद्धसिंह ! तुम्हारे असिरूपी जलधर से उल्लसित कीर्तिरूपी नीर में—जो प्राच्यभूमि के तट पर प्रवाहित है और जो भव-सरोवर को आपूरित कर रहा है और जिसमें साधुवाद की उर्मियाँ तरंगित हैं, नक्षत्र ही मराल प्रतीत होते हैं, सुन्दर नभ की नीलिमा ही शैवाल-जाल है, पूर्णचन्द्र ही कमल है और उसका मधुर मधु ही अमृत हैं। इसका पान देववृन्द भ्रमर के समान कर रहे हैं।]

उपरोक्त रूपक में भले ही अतिशयोक्ति हो किन्तु श्री भट्ट ने बुधसिंहजी के चरित्र-सत्य को झुठलाया नहीं है। श्री भट्ट 'लाल कवि' के नाम से पिंगल में भी कविता लिखा करते थे। उन्होंने एक कवित्त में भी बुधसिंहजी का कीर्ति-गान किया है—

राव अनिरुद्धसिंहजू के राव बुद्धसिंह,
रावरे सबल दल चलत तमक सों।

---

१ श्री कृष्णभट्ट—ये तैलंग ब्राह्मण थे। वि० सं० १७२५ में इनका जन्म हुआ। यह संस्कृत और ब्रजभाषा दोनों के प्रकाण्ड विद्वान थे और काव्य-रचना करते थे। यह श्री बुधसिंह के यहां काफी वर्षों तक आश्रित रहे। इनकी इच्छा से इन्होंने ब्रजभाषा में रीतिकाव्य के दो ग्रंथों (शृंगार-रसमाधुरी और विदग्ध-रसमाधुरी) की रचना की। इन्होंने संस्कृत में भी अनेक काव्य ग्रंथ लिखे—ईश्वरविलास और पद्यमुक्तावली उनमें प्रमुख हैं। जयपुर के महाराज सवाई जयसिंहजी इन्हें अपने यहाँ बुधसिंहजी से मांग कर ले गये। निम्नांकित दोहा इसका प्रमाण है—

बूंदीपति बुधसिंह सौं, लाये मुख सौं जाँचि।
रहे आइ आंबेर में, प्रीति रीति बहु भाँति॥

२ पद्यमुक्तावली—श्री कृष्णभट्ट
[राजस्थान प्राच्य प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित] पृ०सं० ८।

'लाल कवि' तितके भुवाल पयमाल होत,
खूंदें हयमाल खुरतालकी झमक सों।
भारे होत बारिधि अंध्यारे धूरधार उजि-
यारे दामिनी के असि कारेकी दमकसौं।
गारे परैं नदिन पगारे परैं बारिधिन,
गारे परैं अरिन नगारे की धमकसौं।
(अलंकार कलानिधि)

बुधसिंहजी ने नेहतरंग के अतिरिक्त और कोई काव्य-ग्रंथ लिखा हो ऐसा प्रमाण अभी प्राप्त नहीं हुआ है। हाँ, उनके द्वारा समय-समय पर रचित स्फुट छन्द अवश्य मिले हैं। 'राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार' पुस्तक में बुधसिंहजो द्वारा रचित वीररस का एक छन्द उनके परिचय के प्रसंग में दिया गया है। वह इस प्रकार है—

दैत-दिलीपति मीर महाजल, सैद हिलोरनतें अति बाढ़ी।
हिन्दुन की हद दाबि दसों दिसि, तेज तुरक्क तरंगम चाढ़ी।
मारु-महीप प्रभू-अवतार है, धीरज धार गही खग गाढ़ी।
यों कहि बुद्ध अजीत बहार है, बूडी धरा कमधज्ज ने काढ़ी॥[1]

कवि का संघर्षमय जीवन ही इस बात का प्रमाण है कि उन्हें साहित्य-सृजन के लिये अवकाश बहुत कम मिला। अपने जीवन के अन्तिम १०-१२ वर्षों को छोड़ कर वे अपने बाल्य-काल से ही दुर्भाग्य और परिस्थितियों से जूझते रहे। उनके कवच, ढाल और तलवार ने कभी एक क्षण को विश्राम का अनुभव नहीं किया। तब भला उन्हें लेखनी चलाने का अवसर कब मिलता? नेहतरंग की रचना इसी अन्तिम काल में हुई है, ऐसा पुस्तक में वर्णित एक दोहे से प्रकट है—

सतरहसैं चौरासिया, नवमी तिथि ससिवार।
सुक्ल पक्षि भादौं प्रकट, रच्यौ ग्रंथ सुषसार॥
(नेहतरंग, छं. सं. ५३६)

यह भी संभव है कि इसके कुछ अंशों की रचना पहले करली गई हो और इसे पूर्णता उपरोक्त तिथि को मिली हो।

काव्य-विवेचना

ऊपर लिखा जा चुका है कि नेहतरंग रीतिकाल में रचित एक रीतिबद्ध लक्षण-ग्रंथ है और इसमें वे समस्त सामान्य प्रवृत्तियाँ और विशेषतायें विद्यमान

---

[1] राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार—हिन्दी साहित्य परिषद्, जयपुर।

हैं जो रीतिकालीन अन्य कवियों की कृतियों में रही हैं। भाषा, विषय और प्रतिपादन शैली—किसी भी दृष्टि से इस कृति को कोई विशिष्ट रचना नहीं कहा जा सकता और यह सत्य केवल इस कृति के लिये ही नहीं अपितु इस काल में विरचित अधिकांश हिन्दी रीति-ग्रंथों के बारे में कहा जाता है। इस काल के प्रमुख प्रतिपाद्य रस, नायिकाभेद, नखशिख, अलंकार और छन्द रहे हैं। नेहतरंग में भी यही सब कुछ है। राधा और कृष्ण के आलम्बन से [न तु राधा कृष्ण सुमिरण को बहानो है] श्री बुधसिंह ने भी शृंगार का ही प्रतिपादन किया है और वे सर्वत्र अपने काल की कवि-परम्पराओं का पालन करते हुये प्रतीत होते हैं। हां, एक अन्तर-रेखा अवश्य इनके और अन्य कवियों के बीच में है और वह है अभिव्यंजना की मार्मिकता जो इन्होंने काव्यांग के उदाहरण में स्वरचित छन्दों में प्रकट की है। मैं नीचे सोदाहरण अपने मत की पुष्टि करने की चेष्टा करूँगा।

कविता के पक्ष—

नेहतरंग के आधार पर श्री बुधसिंह के काव्य के दो पक्ष स्पष्ट हैं—१ शृंगारिक पक्ष और २ आचार्य पक्ष। इनके द्वारा रचे गये वीररस और नीति के स्फुट काव्य का हम यहां उल्लेख नहीं करेंगे। शृंगार रस के विवेचन में इन्होंने इस रस के समस्त उपकरणों का वर्णन किया है—संयोग, वियोग, नायक-नायिका-भेद, हावभाव, ऋतु-वर्णन आदि और इन सब में मानवीय भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति के साथ रसों का उत्कृष्ट परिपाक हुआ है। इस काल के कवियों का शृंगारिकता के प्रति दृष्टिकोण भोगपरक था अस्तु वे पवित्र प्रेम के उदात्त तत्वों की ओर नहीं जा सके। वे अपने काव्य में केवल ऐसे उपकरण जुटाते थे जो नारी-सौन्दर्य के शारीरिक पक्ष को सर्वाधिक आकर्षक बना सकें। श्री बुधसिंह भी इस सामान्य प्रवृत्ति के अपवाद तो नहीं हैं किन्तु फिर भी इनका शृंगार-वर्णन मात्र शारीरिक वर्णन नहीं है। देव का, जो अनुमानतः श्री बुधसिंह के समकालीन थे, एक संवेगात्मक रूप-चित्रण नीचे देखिए—

जगमगे जोवन जराऊ तरिबन कान,
ओठन अनूठो रस हांसी उमड़े परत।
कंचुकी में कसे आवें उकसे उरोज बिंदु,
बदन लिलार बड़े बार घुमड़े परत।
गोरे मुख स्वेत सारी कंचन किनारीदार,
'देव' मणिए झूमका झमकि झुमड़े परत।

बड़े बड़े नैन कजरारे बड़े मोती नथ,
बड़ी बरुनीन होड़ाहोड़ी अड़े परत ॥[१]

उपरोक्त रूप-चित्र कितना इन्द्रियोत्तेजक और रूपासक्तिपूर्ण है, सहृदय इसका अनुमान सहज ही लगा सकते हैं। देव में संयम और नियंत्रण का अभाव था अतः संभव है यह पूर्ण रूप से उनकी वैयक्तिक प्रतिक्रिया हो। इसमें सौन्दर्य-चेतना का अभाव है और इसीलिये भावनात्मकता इसमें नहीं आ पाई। यह आरोप अकेले देव पर नहीं है, रीतिकाल के अन्य अनेक कवियों में इस प्रवृत्ति के दर्शन होंगे। श्री बुधसिंह में अपेक्षाकृत सौन्दर्य चेतना और भावनात्मकता है। निम्नांकित छन्द इसका उदाहरण है—

अंगनसौं इत रंगनसौं, उभलै अंग चांदिनीसी छवि छांई।
नैननितें प्रति-बैंननितैं, सक सैंननितें सरसैं सरसांई॥
ग्रैसी भई दिन च्यारिकतैं, बृजचंदहूकी मतिकी दुरसांई।
देषत दूनी कलासी चढ़ै सु वढै दिन द्वैजके चंदकी नांई॥
(नेहतरंग, छं. सं. ४४)

उपरोक्त चित्रण एक नवल-वधू के रूप का है किन्तु वर्णन की जितनी सात्विकता, उपमानों का जितना संयत प्रयोग और अभिव्यक्ति की जितनी तीव्रता इसमें है वह देव के उक्त वर्णन में नहीं है। इस वर्णन को पढ़ कर नायिका के प्रति एक सात्विक सौन्दर्य-बोध जागृत होता है जब कि देव के वर्णन से एक प्रकार की ऐन्द्रिय आसक्ति उत्पन्न होती है।

श्री बुधसिंह के काव्य का आचार्य-पक्ष भी सशक्त है। इन्होंने 'सर्वांग विवेचन' किया है। इनकी प्रतिपादन-शैली पद्यात्मक है और संस्कृत के आचार्य वाग्भट्ट की शैली के आधार पर है। काव्यांग के शास्त्रीय विवेचन के लिये इन्होंने दोहे का प्रयोग किया है और उदाहरण के लिये कवित्त, सवैया और छप्पय का। हिन्दी कवियों में तब इसी शैली का अधिक प्रचार था। केशव, तोष, मतिराम, भूषण, देव, भिखारीदास, पद्माकर, बेनीप्रबीन आदि ने भी इसी शैली का अनुसरण किया है।

अलंकार-निरूपण में श्री बुधसिंह की शैली जयदेव के चन्द्रालोक पर आधारित रही है। अलंकार के शास्त्रीय विवेचन और उदाहरण को इन्होंने एक ही छन्द में समाविष्ट किया है। यथा एक ही मुक्तादाम छन्द में उत्प्रेक्षा

---

१ देव और उनकी कविता—डा० नगेन्द्र।

अलंकार का विवेचन और उदाहरण देखिये—

इहै उतप्रेछ जु संसय सांच,
गनौं इक हेत इकै फल वांच।
न ती सम चाल धरै गज धूरि,
मनौं तुव ओठ सुधा ससि पूरि।
नेहतरंग, छ. सं. ४६०

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास के रीतिकालीन प्रकरण में कहा है, "आचार्यत्व के पद के अनुरूप कार्य करने में रीतिकाल के कवियों में पूर्णरूप से कोई भी समर्थ नहीं हुआ।" ऐसी धारणा अन्य विद्वानों की भी है और इसका कारण स्पष्ट है। हिन्दी के आचार्य कवियों को संस्कृत और प्राकृत-अपभ्रंश की रीति-परम्परा परिपक्व रूप में प्राप्त हुई थी। संस्कृत के आचार्यों ने इस क्षेत्र में इतना कार्य कर दिया था कि इनके लिए कुछ शेष नहीं रहा और इसीलिए कतिपय अपवादों को छोड़ कर किसी भी हिन्दी कवि-आचार्य ने रीतिशास्त्रीय मौलिक उद्भावना नहीं की। इस काल के अधिकांश कवि राज्याश्रित थे और चमत्कार की सृष्टि कर तथा अपने आश्रयदाता की स्तुति-प्रशस्ति कर अर्थोपार्जन करना उनका कवि-धर्म हो गया था।

श्री बुधसिंह की स्थिति भिन्न रही है। वे स्वयं नरेश थे और किसी दबाव, आश्रय और प्रशंसा-प्राप्ति की इच्छा से इनके काव्य का निर्माण नहीं हुआ। इन्होंने अपने यहाँ श्री कृष्णभट्ट और भोजमिश्र जैसे रीति-कवियों को संरक्षण दिया। अस्तु यह स्पष्ट है कि इनकी रचना-प्रवृत्ति स्वतन्त्र रही है। राजा जसवन्तसिंह की भांति इनकी दृष्टि भी शुद्ध साहित्यिक रही है और इनका नेहतरंग ग्रंथ एक विशुद्ध काव्य-शास्त्रीय ग्रंथ है जिसमें इनकी रसवादिता और अलंकारवादिता दोनों का उन्मुक्त प्रदर्शन हुआ है।

श्री बुधसिंह का नायक-नायिका-वर्णन पूर्ण रूप से परम्पराभुक्त है। इनके काव्य में नायक-नायिका सम्बन्धी प्रचलित मान्यताओं का अन्य हिन्दी कवियों की भांति अनुसरण हुआ किन्तु कतिपय विभिन्नता को लेकर। नायिका-भेद की परम्परा बहुत पुरानी है और प्रमुखतया इसका सम्बन्ध भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र से है। इस शास्त्र के अन्तर्गत नारी के अवस्था, प्रकृति और कामदशा के अनुसार कई भेद-प्रभेद किये गये हैं और वे ही नायिकाओं के नाम से अभिहित हुई हैं। उन्होंने अपने इस शास्त्र में पुरुषों के भी उनकी प्रकृति के अनुसार, प्रभेद किये हैं और वे नायक के नाम से सम्बोधित हुये हैं।

नायक-नायिका-भेद का विवेचन करने वाला एक और ग्रंथ भी है और वह है वात्स्यायन का कामसूत्र। आचार्य रुद्रट ने इन दोनों ग्रंथों के विवेचन का

समन्वित रूप अपने ग्रंथ 'शृंगार-तिलक' में प्रस्तुत किया है और संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के परवर्ती कवियों में इसीका अधिक प्रचार हुआ।

श्री बुधसिंह का नायक-नायिका-भेद भी रुद्रट की पद्धति का है। इसमें भरतमुनि की नायिकाओं का भी समावेश है तथा वात्स्यायन की नायिकाओं [पद्मिनी, हस्तिनी, चित्रिनी, शंखिनी] का भी। केशव, मतिराम, देव आदि कवि-आचार्यों का प्रभाव तो इनके नायिका-भेद पर परिलक्षित होता ही है किन्तु इनके यहाँ आश्रित कवि श्री कृष्णभट्ट के नायक-नायिका-विवेचन का प्रभाव अधिक स्पष्ट और प्रगाढ़ है। श्री भट्ट ने इनके आदेश से ही वि० सं० १७६९ में 'शृंगार-रस-माधुरी'[1] नामक रस-ग्रंथ का निर्माण किया था। इसमें सभी रसों के साथ नायक-नायिका-भेद का विशद विवेचन है। नेहतरंग में उन्हीं नायक-नायिकाओं का वर्णन है जो 'शृंगार-रस-माधुरी' में है। दर्शन, हावभाव, मान-मोचन, रस आदि अन्य काव्यांगों के भी वे ही भेद बताये गये हैं जो श्री भट्ट ने अपनी इस कृति में लिखे हैं। यह कृति क्योंकि अभी अमुद्रित है और अप्राप्य भी है अतः दोनों का ठीक तुलनात्मक अध्ययन कर के निश्चित निष्कर्ष तो नहीं दिये जा सकते किन्तु इतना स्पष्ट है कि श्री कृष्णभट्ट और श्री बुधसिंहजी का निकट सान्निध्य रहा है, अतः प्रभाव स्वाभाविक है। यह भी सम्भव है कि श्री भट्ट ने बुधसिंहजी को काव्यशास्त्रीय मार्ग-दर्शन दिया हो।

श्री बुधसिंह की अनुभूति एकान्त शृंगारिक रही है अतः काव्यांगों के शास्त्रीय लक्षणों के विवेचन के पश्चात् उदाहरणस्वरूप अपने भावों की जो अभिव्यंजना इन्होंने की है वे आलम्बन व आश्रय (राधा और कृष्ण) की चेष्टाओं (अनुभावों) के बहुत मधुर चित्र प्रस्तुत करती है—एक उत्कंठिता का रूपचित्र देखिये—

चंद्रिकासी अवला चपलासी, लखैं कमलासी सो सोभा लगीसी।
सारी हरि गहरैं रंगसौं, उझलीसी गुराई परैं उमगीसी।।

---

[1] शृंगार-रस-माधुरी का वर्ण्यविषय प्रमुख रूप से 'रस' है। यह सोलह 'स्वादों' में विभक्त है। बुधसिंह की 'नेहतरंग' और इनकी 'शृंगार-रस-माधुरी' के वर्ण्यविषय में पर्याप्त साम्य प्रतीत होता है। नायक-नायिका भेद, रस, हावभाव, दर्शन, सखीवर्णन, मानमोचन आदि के, नेहतरंग में वे ही भेद-प्रभेद हैं जो शृंगार-रस-माधुरी में श्री कृष्णभट्ट द्वारा निरूपित हैं।

[आधार—हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, खण्ड ३, अध्याय ४, पृ० सं० ३९३-३९५]

लाषौं मनौंरथकीसी मिली, रही आंवनि लालकैं आषौं षरीसी।
चौंकी चकीसी, जकीसी बकीसी, टगी अटकीसी गढ़ी है ठगीसी॥
(नेहतरंग, छं. सं. ६१)

रूपबोध के साथ कवि का नायिका की मनोदशाओं का अध्ययन कितना सूक्ष्म है—यह उपरोक्त छन्द से प्रकट है। इसमें गतिशीलता का समावेश भी है। अब एक वर्ण्य-चित्र भी देखिये—

आजु छबि देत बलि राधे बृजचंद साथ,
अंग अंग उमगत जोबनकी जोरेंतें।
केसरिकै रंग नित रंग सोहै केतकीके,
कमल गुलाब कहा चंपक निहोरेंतें।
असैं लषि रीझिकैं लसत रीझि कुंज-भौंन,
उप्पम न आवै कछु मेरे चित्त चोरेंतें।
चांदिनी सुदेस मुष-चंदकौं निहारि करि,
चाकरसे ह्वै चले चकोर चहूँ ओरेंतें।
(नेहतरंग, छं. सं. ७७)

केसर, केतकी और गुलाब के जड़ वर्णों के सहारे कवि ने राधा के रूप का प्राणवन्त चित्रण किया है। नवयौवन के वर्ण का सादृश्य केसर के वर्ण में है— कमल, गुलाब और चंपा पुष्पों के वर्णों की सादृश्यता भी नवयौवना के विभिन्न अंगों में प्रकट की जाती है। कवि ने इन रंगों में प्राण-प्रतिष्ठा कर राधा के लावण्य को अत्यन्त ही प्रभावोत्पादक ढंग से मूर्तिमान किया है। श्री बुधसिंह और अन्य कवियों में कला और आचार्यत्व की दृष्टि से यही सूक्ष्म अन्तर है कि इनके प्रयोगों और वर्णनों में अधिक रूढ़ता नहीं है, अस्पष्टता नहीं है। इनके सभी चित्र भावोद्रेकपूर्ण हैं।

काव्य रूप (छन्द-योजना)—

नेहतरंग की छन्द-योजना पर जब दृष्टिपात करते हैं तो हमें सर्वत्र समकालीन परम्परा के ही दर्शन होते हैं। यह कृति एक 'सर्वांग-निरूपक लक्षण-काव्य' है और जिस प्रकार रीतिकाल में रीति-ग्रंथ लिखने वाले सभी कवि-आचार्यों ने मुक्तक का [दोहा, सवैया, कवित्तका] सहारा लिया था, श्री बुधसिंह ने भी इसी काव्य-रूप को अपनाया।

दोहा, सवैया, कवित्त, छप्पय आदि छन्द-शास्त्र की दृष्टि से 'मुक्तक' हैं। इनमें 'अन्यनिरपेक्षता' होती है। यह लघु रसात्मक खंडदृश्यों के चित्रण में

अधिक सक्षम होते हैं। इनमें चमत्कार की सृष्टि भी आसानी से हो जाती है।[१] रीतिकाल में राजसभा में प्रशंसा पाने, राजाओं की रसिकता को तुष्ट करने और थोड़े में रसोद्रेक और चमत्कार की सृष्टि के लिये 'मुक्तक' सर्वथा उपयुक्त थे।

नेहतरंग क्योंकि एक सर्वांग-निरूपक काव्य है, इसलिये इसमें दोहा, सवैया, कवित्त के अतिरिक्त छन्द और अलंकार प्रकरण में कवि ने अन्य छन्दों का प्रयोग भी अनिवार्य रूप से किया है जैसे कवित्त और सवैया के विभिन्न प्रकारों का। छप्पय, कड़षा और मुत्तीयदाम छन्द का प्रयोग भी इस कृति में हुआ है। काव्यांग का शास्त्रीय विवेचन तो परम्परा के अनुसार इन्होंने भी दोहे में ही (अलंकार-निरूपण के अतिरिक्त) किया है और फिर उदाहरण अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार कवित्त, सवैया अथवा छप्पय में दिया है।

श्री बुधसिंह ने छन्द-निरूपण के प्रथम दोहे में ही कहा है कि "नागपिंगल" छन्द-शास्त्र के छन्दों में से कुछ का वर्णन मैं यहाँ कर रहा हूँ—

बहुत छन्द कृत नाग के[२], पिंगल मत बिसतारि।
बिदत छन्द कछु कहत हौं, सो नीकै उर धारि॥

इस दोहे से स्पष्ट है कि इन्होंने नाग कृत छन्द-शास्त्र का अध्ययन कर उसी के मतानुसार कतिपय छन्दों के लक्षण दिये हैं। किन्तु यह अकेले इनकी ही विशेषता नहीं है। इस काल में लिखने वाले सभी कवियों ने 'नागपिंगल' का ही सहारा लिया है। 'पिंगल' ही छन्द-शास्त्र के आदि-आचार्य हैं। जो स्थान व्याकरण-शास्त्र में पाणिनि को प्राप्त है वही छन्द-शास्त्र में पिंगल को। परवर्ती जितने भी छन्द-शास्त्र के आचार्य हुये हैं, उनका मूलाधार यही ग्रंथ है। हिन्दी रीति-कवियों ने यह परम्परा सीधे संस्कृत से न अपना कर प्राकृत-अपभ्रंश से अपनाई है। स्वयं बुधसिंहजी का—दोहे के लक्षण बताने वाला छन्द

---

[१] हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (रीतिकाल)

[२] नाग—साहित्य में इनका पूरा नाम नागराज मिलता है। इनका पौराणिक अथवा ऐतिहासिक अस्तित्व क्या रहा है—कुछ विदित नहीं हो पाया है। कहते हैं ये छन्दशास्त्र के आदि रचयिता हैं किन्तु यह अभी किसी साहित्यिक अनुसंधान से सिद्ध नहीं हो पाया है। यों पिंगल मुनि छन्दशास्त्र के आदि रचयिता माने गये हैं। नाग (शेष) का एक पर्याय 'पिंगल' भी है अतः संभव है नागराज व पिंगलमुनि एक ही हों। एक किंवदंती के अनुसार शेषनाग ने ही छन्दशास्त्र की रचना की बताते हैं।

(डिंगल कोष—राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर)

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत पैंगलम्[1] में दिये गये लक्षणों का पिंगल अनुवाद मात्र है—

तेरह मत्ता पढ़म पअ, पुणु एआरह देइ।
पुणु तेरह एआरहहि, दोहा लक्खइ एह॥
(प्रा० पैं०)

श्री बुधसिंह ने इसी दोहे को इस प्रकार रूपान्तरित किया है—

तेरै मत्ता प्रथम ही, पुनि अग्यारह जोइ।
तेरै ग्यारह बहुरि करि, दोहा लक्षन होइ॥
(नेहतरंग छं. सं. ४२६)

कविता और छन्द का संबंध अनिवार्य ही है। प्रसिद्ध दार्शनिक मिल ने एक जगह कहा है, "जब से मनुष्य मनुष्य है तभी से उसके सभी गंभीर और सम्बद्ध भावों की अपने आपको लययुक्त भाषा में व्यक्त करने की प्रवृत्ति रही है। भाव जितने ही गंभीर हुये हैं लय उतनी ही विशिष्ट और निश्चित हो गई है।" उपरोक्त कथन में एक मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्‌घाटन हुआ है। कविता और छन्द का वास्तव में एक नैसर्गिक सम्बन्ध है और शायद इसीलिये प्रत्येक कवि ने छन्दोबद्ध कविता की है। आधुनिक युग की नई कविता का कवि भी इसका अपवाद नहीं है—उसमें भी एक गति और लय-योजना होती है। रीति-काल के कवियों ने जिन छन्दों का आलम्बन लिया उनमें लयात्मकता और संगीत अधिक है किन्तु जो कवि वर्णों और शब्दों के चयन में सतर्क नहीं रहे उनमें माधुर्य और संगीतात्मकता का अभाव रहा है। उपरोक्त छन्दों में [कवित्त, सवैया में] ध्वन्यात्मकता का प्राधान्य रहा है और जिन शिल्पियों ने ऐसा नहीं किया उनके छन्द रूखे काव्य—शरीर मात्र बन कर रह गये हैं।

श्री बुधसिंह में ऐसी रूक्षता परिलक्षित नहीं होती। उनके शब्दों में ध्वन्यात्मकता है—वे संगीत की कोमल और श्रुतिसुखद तरंगें उठाने में सफल हैं। शब्दालंकारों और अनुप्रासों का प्रयोग उनके छन्दों में नाद-सौन्दर्य की सृष्टि करता है। एक उदाहरण देखिये—

गाजकें सज्जल कज्जलसे, घन छूटि मदज्जलसे झर जागी।
मोरके सोर करैं चहुं ओर, सो चंचला ज्यौं चलि बाग उनागी॥
(नेहतरंग, छं. सं. ४००)

---

[1] प्राकृत पैंगलम्—यह प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के छन्दशास्त्र का ग्रन्थ है। कहते हैं इसकी रचना कई विद्वानों के योग से हुई। यह १४ वीं श० ई० में रचा गया था। इस पुस्तक का प्रभाव हिन्दी-छन्दशास्त्र पर पर्याप्त रूप में दृष्टिगोचर होता है। (साहित्य कोश)

ऋतु-वर्णन—

रीतिकाल में ऋतु-वर्णन की दो परम्परायें रही हैं—एक निरपेक्ष-ऋतुवर्णन और दूसरी सापेक्ष-ऋतुवर्णन। निरपेक्ष-ऋतुवर्णन में नायक नायिका का आलंबन ग्रहण नहीं किया जाता। इसमें सहज भावोद्दीपन होता है, सुन्दर अभिव्यंजना के सहारे ऋतु का एक संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किया जाता है। संस्कृत के कुछ कवियों के काव्यों में ऐसे चित्र उपलब्ध होते हैं। हिन्दी के कवियों में सेनापति ऐसे हैं जिन्होंने ऋतुओं के निरपेक्ष संश्लिष्ट चित्र अंकित किये हैं। पद्माकर में भी कहीं-कहीं पर इसके दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए उनका बसन्त-वर्णन देखिए—

कूलन में, केलि में, कछारन में, कुंजन में,
क्यारिन में कलिन कलीन किलकंत है।
कहै पद्माकर पराग हू में, पौन हू में,
पानन में, पिकन, पलासन पगंत है।
द्वार में, दिसान में, दुनी में, देस-देसन में,
देखो द्वीप द्वीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में, ब्रज में, नवेलिन में, वेलिन में,
बनन में, बागन में, बगरचौ बसंत है॥

उपरोक्त वर्णन में वसंत के समस्त अन्तर और बाह्य का चित्र सहृदयों के नेत्रों में अंकित हो जाता है। उसके रूप, रस, गंध सभी प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

सापेक्ष ऋतुवर्णन में ऐसा नहीं होता। ऋतुओं के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को नायक-नायिकाओं की संयोगावस्था व वियोगावस्था से सम्बद्ध कर दिया जाता है। पावस ऋतु का नायिका के विरह की पृष्ठभूमि में सापेक्ष वर्णन इस प्रकार होता है—

श्रीपति सुकबि कहै घेरि घोर घहराहिं,
तकत अतन तन ताप में तए तए।
लाल बिनु कैसे लाज चादर रहैगी आज,
कादर करत मोहि बादर नए नए।

श्री बुधसिंह ने नेहतरंग में ऋतुवर्णन की दोनों परम्पराओं को अपनाया है। प्रसंग-सापेक्षता और निरपेक्षता दोनों के दर्शन इनके ऋतुवर्णन में होते हैं—

फूली लता नव पल्लवकी, सो जटा पुलि केसरि ज्यौं छबि छायौ।
गुंजन भौंरनकी चहुधां, कुसमाद पलासनकें नप लायौ॥
सीतल-मंद-सुगंध समीर, तिही भय त्रासन आगम धायौ।
यौं बृजपैं बृजराज बिनां, रितुराज मनौं मृगराज ह्वै आयौ॥

(नेहतरंग, छं. सं. ४१६)

यह बसंत-ऋतु का सापेक्ष चित्रण है। कृष्ण की अनुपस्थिति में विरही ब्रज के लिए बसंत मृगराज के समान कष्टदायी है। यह सांगरूपक भी है।

अब बुधसिंहजी के निरपेक्ष-ऋतुवर्णन का चित्र देखिये—

छूटिं झरें धुरवा गति ज्यौं, गंगधार हजारनकी सरषा है।
बादर नांहिं विभूति लसें, नांद कोकिल कीजतिकी करषा हैं।
चंचला सोहै जटा पुलिकें, भाल-चंदसो चन्द्रिकाकी निरषा है।
उप्पमताई सौं यौं परसें, दरसें महादेव किधौं बरषा है॥

(नेहतरंग, छं. सं. ४२०)

वर्षा ऋतु की जटाधारी महादेव से तुलना कर कवि ने सांगरूपक प्रस्तुत किया है किन्तु इसमें वियोग अथवा संयोग की नितान्त निरपेक्षता निहित है।

भाषा—

मैं ऊपर कह आया हूँ कि बुधसिंहजी ने अपनी काव्य-रचना का माध्यम पिंगल को बनाया था। किन्तु नेहतरंग की पिंगल और राजस्थान में इसी काल में रचित अन्य काव्यों की पिंगल में बहुत बड़ा अन्तर है। राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा को पिंगल नाम दिया गया है। यदि नेहतरंग की भाषा का सूक्ष्म अध्ययन करें तो इसके रूप और प्रकृति में हमें राजस्थान की तत्कालीन साहित्यिक भाषा डिंगल अथवा राजस्थानी की छाप अधिक मिलती है। इसके संज्ञा-शब्दों के अतिरिक्त बहुत से विशेषण, कारक, सर्वनाम और क्रियारूप भी डिंगल के ही हैं। निम्नांकित शब्द जो नेहतरंग में प्रयुक्त हुये हैं, स्पष्ट रूप से राजस्थानी के हैं—

बलाय, तेरू, पखेरू, साषै, अगाऊलैं, बेर, उमाहि, वारपार, सगलौ, सगरी, उग्यौ, रढ़ी अपूठैं, पसरी, सरत, सरीषी, नौज आदि।

इन शब्दों (संज्ञा, विशेषण, क्रिया) का नेहतरंग में प्रचुर प्रयोग हुआ है और ब्रजभाषा संस्कृत के तत्सम तथा अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भी राजस्थानी की प्रकृति में ढाल कर ही कवि ने किया है। अतः मेरा अपना मत यह है कि यदि हम 'नेहतरंग' की भाषा को शुद्ध राजस्थानी नहीं तो कम से कम शुद्ध पिंगल भी नहीं कह सकते। इसे पिंगल की एक शैली विशेष कहा जाना चाहिए जिसमें राजस्थानी का रूप मुखर हुआ है। भाषा-विवाद के पारंगत योद्धा 'इस' और 'उस' भाषा को 'यह' और 'वह' भाषा सिद्ध करने की आग्रहपूर्ण चतुरता दिखाया करते हैं। राजस्थानी के अनेक रासो-ग्रंथों की भाषा को लेकर यह विवाद आज भी है। मीरां के काव्य की भाषा पर भी सभी विद्वान आज एकमत नहीं हैं। मेरा अभिप्राय नेहतरंग की भाषा को लेकर यह

विवाद प्रारम्भ करने का नहीं है। जो मेरा अल्प ज्ञान बताता है उसी के आधार पर मैंने यह मत प्रकट किया है।

नेहतरंग की भाषा में संस्कृत के तत्सम, प्राकृत और अपभ्रंश तथा उर्दू-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। यह भी रीतिकाल के कवियों की सामान्य भाषा-प्रवृत्ति रही है। देव, पद्माकर, मतिराम, भिखारीदास, रसखान आदि में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। बुधसिंहजी इसके अपवाद कैसे रहते ?

बुधसिंहजी ने प्रचलित मुहावरों का प्रयोग भी बहुलता से किया है। मुहावरों के उपयुक्त प्रयोग से अभिव्यंजना में तीव्रता आ जाती है। किन्तु जहां मुहावरों का अति प्रयोग कवि का साध्य हो जाता है वहां भावव्यंजना के स्थान पर चमत्कार की अधिकता हो जाती है। बुधसिंहजी ने ऐसा नहीं किया—मुहावरों का प्रयोग इन्होंने बहुत संयत होकर केवल भावाभिव्यंजना में सौन्दर्य और तीव्रता लाने के लिए किया है। नीचे का उदाहरण मेरे कथन की पुष्टि करेगा—

फूलि है धौं घर आपन के, लगि सोच संकोंच बढ़े वन ये हैं।
क्यौं वृजमैं बसिवौ सजनी, वृजचंद तौ चौथिकौ चंद भये हैं।।

(नेहतरंग, छं. सं. ३०)

यहाँ 'चौथिकौ चंद' में कोई चमत्कार का भाव नहीं है। नायिका की वियोगजन्य विवशता में एक प्रकार की तीव्रता पैदा की गई है।

इसी प्रकार 'बैर परे हैं, जाल सफरी ज्यौं, आंबिन लागि, हाथ बिकी है, पखेरू लौं फिरत हैं, काच की चूरि लौं, पीछें परें कछु हाथ न आवैं' आदि मुहावरों का बहुत स्वाभाविक रूप में प्रयोग हुआ है—प्रयत्नजन्य नहीं।

नेहतरंग की भाषा में अलंकरण (Ornamentation) का प्राचुर्य है। कोई भी ऐसा छन्द आपको नहीं मिलेगा जिसमें किसी न किसी अलंकार की छटा नहीं दिखाई गई हो। शब्दालंकार और अनुप्रास का स्वाभाविक प्रयोग भाषा और भावों को अलंकृत करता है। नेहतरंग में वृत्यनुप्रास, छेकानुप्रास और अन्त्यानुप्रास का बहुलता से प्रयोग हुआ है।

भाषा-सौष्ठव का दूसरा अंग है—अर्थ-ध्वनन। शास्त्रीय दृष्टि से यह भी एक प्रकार से अनुप्रास के अन्तर्गत ही है। अर्थ-ध्वनन से तात्पर्य है—व्यंजनों की मैत्री और अनुकरणमूलक शब्द। जब ऐसे वर्णों का प्रयोग एक साथ होता है तो उनमें एक प्रकार की ध्वनि उठती है और वह एक विशेष अर्थ को अभिव्यक्त करती है। जैसे—'तनक तनक तामें झनक चुरीन की', 'तनक तनक' में स्वतः

ही चूड़ियों की झंकार अभिव्यक्त हो जाती है। यह ध्वनिप्रधान शब्द है। नेहतरंग में कवि ने ऐसे ध्वनि-प्रधान वर्णों और शब्दों का प्रयोग कर अर्थ-ध्वनन का सौन्दर्य पैदा किया है—

······हा बलि हौं इन बात निहारी

नेहतरंग की भाषा में कान्ति-गुण (Polish) का भी अभाव नहीं है। शब्द-गत औज्ज्वल्य और मसृणता के दर्शन सर्वत्र होते हैं। न तो कहीं कोई भर्ती का शब्द है और न कोई निरर्थक। सम्पूर्ण शब्द-योजना में एक प्रकार की कसावट है और इससे भाव-व्यंजना में स्वतः ही सौन्दर्य आ गया है।

परवर्ती कवियों का प्रभाव—

श्री बुधसिंहजी सर्वथा मौलिक कवि-आचार्य हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। रीतिकाल के अन्य कवि-आचार्यों की भांति इन्होंने भी अपनी समकालीन प्रवृत्तियों और परम्पराओं से प्रभावित होकर काव्य-रचना की है। संस्कृत और प्राकृत-अपभ्रंश की जो रीति-रचना हिन्दी में आई और जिसका अनुकरण कतिपय अपवादों के साथ जिस प्रकार केशव, विहारी, देव, मतिराम आदि ने किया उसी प्रकार श्री बुधसिंहजी ने भी किया, यह सत्य है। उपमाओं के रूढ़ प्रयोग, रीतिकाल का काव्य-रूप, प्रतिपाद्य और जीवन-दर्शन इनमें भी ज्यों के त्यों मिलते हैं। भेद है तो इतना ही कि इनकी लेखनी रूप-वर्णन में उच्छृंखल नहीं रही। इनमें शृंगारिक भोगपरता का अपेक्षाकृत अभाव है, सवेगात्मक रूप-वर्णन की ओर इनकी आसक्ति कम है। राधा और कृष्ण को अपने नायक और नायिका मान कर इन्होंने सात्विकता का निर्वाह किया। इसका कारण यही रहा कि ये नरेश थे, चमत्कार सृष्टि और शरीर-सौन्दर्य का अनुदात्त वर्णन कर इन्हें न तो किसी से स्वर्णमुद्रा पुरस्कार में लेनी थी और न प्रशंसा प्राप्त करनी थी। काव्यानुरागियों के लिये इन्होंने स्वान्तःसुखाय ही सब कुछ लिखा।

इनके वर्ण्य-विषय और अभिव्यंजना पर समीक्षात्मक दृष्टिपात करने पर यह प्रकट है कि देव, विहारी, मतिराम, रसखान, श्री कृष्णभट्ट आदि का इन पर स्पष्ट प्रभाव है। भावसाम्य के साथ कहीं कहीं पर तो शब्द-समूह और पंक्तियाँ भी मिल गई हैं। बिहारी के बसन्त-वर्णन पर रचित दोहे और बुधसिंहजी के दोहे की तुलना कीजिये—

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गंध।
ठौर ठौर झूमत झपत, भौंर झौंर मधु अंध॥

(बिहारी)

करत गुंज मिलि पुंज अति, लपटें लेत सुगंध।
ठौर ठौर झौंरत झपत, भौंर-झौंर मद अंध॥
(नेहतरंग, छं. सं. ४१५)

यह प्रभाव-दोष अकेले श्री बुधसिंहजी में ही नहीं है। यदि हम अन्य समकालीन लेखकों और कवियों का तुलनात्मक अध्ययन करें तो इसका प्रभाव सर्वत्र परिलक्षित होगा। बिहारी की सतसई पर अमरुशतक की स्पष्ट छाया है। देव, मतिराम, सेनापति आदि भी इस दोष से नहीं बचे हैं। फिर इसे दोष भी क्यों कहा जाय? यह तो युग-प्रवृत्तियों की स्वाभाविक प्रतिक्रिया मात्र है। अतः हमें श्री बुधसिंहजी पर पड़े इस प्रभाव को इसी स्वस्थ दृष्टि से लेना है।

पिंगल रीति-काव्य में स्थान--

नेहतरंग और श्री बुधसिंह की संक्षेप में सर्वांग काव्य-समीक्षा करने के पश्चात् अब हमें यह देखना है कि पिंगल-साहित्य में नेहतरंग का क्या स्थान है और राजस्थान के पिंगल रीतिकाव्य में श्री बुधसिंहजी का क्या योग है। रीतिकाल में, राजस्थान में पिंगल में जो रीति-ग्रंथ लिखे गये उनमें से अधिकांश एकांग-निरूपण शैली के हैं अर्थात् या तो वे रसपरक हैं या छन्दशास्त्र या अलंकारों पर। कुछ कृतियाँ ऐसी भी हैं जो सर्वांग-निरूपण शैली को आधार मान कर लिखी गई हैं। महाराजा जसवन्तसिंहजी रचित 'भाषाभूषण' ऐसी ही एक प्रतिष्ठित कृति है। नेहतरंग का स्थान भी पिंगल रीतिग्रंथों में वही होना चाहिये जो 'भाषा भूषण' का है। डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने नेहतरंग के विषय में लिखा है, "नेहतरंग हिन्दी-साहित्य की एक अनमोल निधि है—साहित्य की दृष्टि से यह एक निष्कलंक रचना है। भाषा, भाव, काव्य-सौष्ठव सभी का इसमें सुन्दर संयोग हुआ है"।[1] इसी प्रकार डॉ० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' ने कहा है कि श्री बुधसिंह पिंगल साहित्य के उच्च कोटि के कवि-आचार्य थे। उनकी नेहतरंग का पिंगल के रीति-ग्रंथों में विशिष्ट स्थान है।[2] अस्तु हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि चाहे श्री बुधसिंहजी ने परिमाण की दृष्टि से बहुत थोड़ा लिखा हो किन्तु उनकी यह एक रचना ही रीति-साहित्य के क्षेत्र में उन्हें विशिष्ट स्थान दिलाने के लिये पर्याप्त है।

उपसंहार

राजस्थान के साहित्य और साहित्यकारों की उपेक्षा को लेकर इस निबन्ध

---

[1] राजस्थान का पिंगल साहित्य—डा० मेनारिया, पृष्ठ सं० १२३।
[2] राजस्थानी साहित्य की प्रगति और परम्परा—डा० अरुण।

के प्रारम्भ में मैंने दुःख प्रकट किया है। मैं इसकी पुनरावृत्ति करते हुये लिखना चाहूँगा कि राजस्थान को मनोभूमि बहुत ही उर्वर रही है—इसकी साहित्यिक सम्पदा अमूल्य है। यहाँ के संग्रहालयों में, राजघरानों में, प्राचीन ऐतिहासिक केन्द्रों में तथा गाँवों की झोंपड़ियों में हस्तलिखित ग्रन्थों के रूप में अनन्त ज्ञान-राशि छिपी हुई है। उनका सर्वेक्षण, गवेषणा और मूल्यांकन अब द्रुत गति से होने लगे हैं। "राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान" इस क्षेत्र में अत्यन्त श्लाघनीय कार्य कर रहा है। शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टिट्यूट, बीकानेर; राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर और राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर की सेवायें भी कम प्रशंसनीय नहीं हैं। किन्तु इस क्षेत्र में जितना कार्य हो जाना चाहिये था वह नहीं हो पाया। हिन्दी क्षेत्र के विद्वानों की उत्तरदायिता भी इस विषय में कम नहीं है। आज सबसे बड़ी आवश्यकता है—हमारे दृष्टिकोण की उदारता। भाषायी और प्रादेशिक भावनाओं से ऊपर उठ कर विद्वानों को उदार और निरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाना चाहिये, देश के साहित्यिक और भावनात्मक एकीकरण के लिये आज हमारी यह राष्ट्रीय आवश्यकता है। विद्वान इसे मेरा एक नम्र निवेदन मात्र समझें।

इस पुस्तक के सम्पादन और इसकी भूमिका लिखने में मैंने बहुत से विद्वानों की कृतियों का उपयोग किया है। मैं उनके लेखकों और प्रकाशकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के सम्मान्य संचालक श्रद्धेय मुनिवर पद्मश्री जिनविजयजी का मैं कृतज्ञ हूं कि जिन्होंने इस पुस्तक का प्रकाशन प्रतिष्ठान से करना स्वीकार किया। इस पुस्तक के सम्पादन में, सामग्री के प्रूफ संशोधन में महत्त्वपूर्ण मार्ग-निर्देशन देकर प्रतिष्ठान के उप संचालक श्री गोपालनारायणजी बहुरा ने जो रुचिपूर्वक योग दिया है तदर्थ मैं चिरऋणी रहूँगा। प्रतिष्ठान के प्रवर शोध सहायक श्री पुरुषोत्तमजो मेनारिया को भी मैं धन्यवाद देता हूँ कि पुस्तक के प्रकाशन में इनका आद्योपान्त सहयोग रहा है।

१० जुलाई, १९६१,
हिन्दी विभाग,
जसवन्त कॉलिज,
जोधपुर।

रामप्रसाद दाधीच

बूंदीनरेश हाडा रावराजा बुधसिंहजी कृत

नेहतरंग

अथ श्रीनेहतरंग

॥दं०॥ श्रोम् नमः ॥श्रीगणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः ॥ श्रीगुरुभ्यै नमः ॥

दोहा – शुंडादंड[1] उदंड श्रति, चंदकला षुलि साथ।
बिघनहरन[2] मंगलकरन, जं[3] गजमुष गननाथ[4] ॥ १

छप्पय – मदन - मोदकर - बदन[5] सदन बेताल[6] - जाल - व्रत।
भक्त - भीत - भंजन श्रनेक जिन श्रसुर - बंस - हृत[7]।
चन्द्रहास कर चंड चंडमुंडादि - रुहिरमय।
श्रनलझालजुत[8] भाल लाललोचन बिसाल[9] जय।
जय जय श्रचिंत[10]गुन-गन-श्रगम, श्रात्मसुख[11] चैतन्यमय।
जय दुरतिहरण[12] दुर्गा जननि, राजति[13] नवरसरूपमय॥ २

कवित्त – एक वोर[14] मंगा गंगा सोहै[15] एक वोर श्राधैं[16],
छूटि रहे केस श्राधैं छूटी जटा भेसकौं[17]।
श्राधैं दुपटा[18] है[19] लंक सोहत बघंबर सौं,
सोहैं ससि भाल नव बेस केल बेसकौं॥
श्राषिन तरंग भंग भ्रिकुटी श्रनंग वर,
दैंन कौं उमंग राजैं[20] भसम उजेसकौं।
भूषन फनेस सुर सेवत सुरेस बेस,
मेरी वोर की हमेस श्रादेस भूतेसकौं[21] ॥ ३

---

१. १ ख. सुंडादंड। २ ख. विघनहरन। ग. विंघनहरन। ३ ख. जय। ४ ख. गणनाथ।
२. ५ ख. वदन। ६ ख. वेताल। ७ ख. हत। ८ ख. श्रनलजालव्रत। ग. श्रनलजालव्रत
९ ख. विशाल। १० ख. जय। ग. श्रनंत। ११ ख. ग. श्रातम।
१२ ख. ग. हरन। १३ ख. राजत।
३. १४ ख. श्रोर। १५ ग. सौहे। १६ ख. श्राधे। १७ ख. भेसको। १८ ख. दुपटा।
१९ ख. हे। २० ख. राजें। २१ ख. भूतेशकौं।

दोहा – रूप-सुधा-रस सरससौं, बरन[1] हंस मिलि संग।
नीरज नवरस रंग करि, नेहतरंग तरंग ।। ४

रस बिभाव[2] अनुभाव अरु, सब संचारी भाव।
भाषा बरनि बताइहौं, ज्यों दरपन दरसाव ।। ५

जामैं[3] स्थायी-भाव रति, सो बरन्यों श्रृंगार।
यक संजोग बियोग यक, ताके[4] द्वय[5] परकार[6] ।। ६

अथ श्रीराधिकाकौं संजोग-श्रृंगार यथा

कवित्त – प्रीतिके उपायनसौं भांति भांति भायनसौं,
सहज सुभायनके भायनकौं लै रहे[7]।
निपट[8] प्रगट उघटत न घटत नट,
सु लटैं सुघट उछटनि छबि छै रहे ।।
बृंदाबनचंदके दरस पर बारबार,
जीतिबेके जंत्रनसे[9] जतन जितै[10] रहे।
खंजन पटंतर न लागत निरंतर,
सो नैंनां पट - अंतर धनंतरसे ह्वै रहे ।। ७

अथ श्रीराधिकाकौं बियोग-श्रृंगार

[**यथा** – ऊधौ क्यों[11] न कहो जाइ[12] स्यांम सुखदाइकसों,
वृजमें[13] विरंचि एक विधि नइ वांधी हैं।
हेरि काम गोपिनके दृग-मृग पहिचांनि,
सांवन बंदूक कंध पावसकैं कांधी हैं ।।
गाजतें करें[14] अवाज जाम लगी[15] लगाये वीज,
ससति संभारिके अचूक ताकि नांधी है।

४. १ ख. बदन।
५. २ ख. विभाव।
६. ३ ख. जामें। ४ ग. वाके। ५ ख. दोय। ६ ख. प्रकार।
७. ७ ख. रहैं। ८ ख. निघट। ९ ख. जंत्र। १० ख. जते।
८. ११ ख. ग. क्यौं। १२ ख. जाई। ग. जाय। १३ ख. बृजमें। ग. ब्रजमें।
१४ ग. करैं। १५ जामे लगी। ग. जामगी।

परी अधर परी अनपरी ए न होंहि बूंद,
गोरी एक मारी एक छोडी एक साधी[1] है॥ ८

अथ नायकवर्णन

दोहा – सुन्दर सकल कलानिपुन, अति प्रवीन सुख साज।
प्रीतवंत गुनवंत अति, सो नायक ब्रजराज॥ ९
च्यारि भेद ताके सुनहु, अनकूल ह्रियकों[2] देखि।
दक्षिन दुतिये त्रतिय सठ, धृष्ठ सु चोथो[3] लेखि॥ १०

अथ अनुकूल लछिन

हित करिके[4] नितप्रति रहै, निज नारीकै सूल।
अनित चित चंचल नहीं, ताहि कहत अनुकूल॥ ११

कवित्त – चन्द्रकों[5] चकोर ज्यौं दिवाकरकों[6] चक्रवाक,
जैंसे मघवांनकों कलापी वरजोरी हैं।
जोगी जोग-ध्यांनकों जुराफा ज्यों[7] जुरानकों,
महोदधिके थानकों मराल मति मोरी है।
ए री बलि चंदमुखी तेरे मुखचंद पर,
वृंदांवनचंदकी लगनि यों[8] निहोरी है।
चाय[9] वरजोरी यन चातकन[10] लोचननि,
चातकतें[11] चोरी कैंधो चातकन चोरी[12] है॥ १२]*

अथ दक्षिन लक्षन

दोहा – पहलौ[13] सौहित[14] सहज उर, अति विचित्र समप्रीति।
मन चालै तन बसि रहै, इह दक्षनकी रीति॥ १३

---

८. १ ग. सांधी।
१०. २ ग. हियकु। ३ ग. चोथौ।
११. ४ ख. ग. करिकै।
१२. ५ ग. चंदकों। ६ ग. कौं। ७ ख. ग. ज्यौ।
८ ग. यौं। ९ ग. चापि। १० ग. घनवातक।
११ ग. तैं। १२ ग. चौरी।
*टि०– बड़े कोष्ठकमें दिये गये छन्द मेरे पास उपलब्ध प्रतिमें नहीं थे। ये छन्द श्रद्धेय अगरचंदजी नाहटा, बीकानेरसे प्राप्त प्रतिमेंसे लिये गये हैं। (सं०)
१३. १३ ख. ग. पहिलो। १४. ख. ग. सोहित।

सवैया – आज लसैं ब्रजनारी सबै, जमना तटपैं जुरि आई अलेषैं ।
ता समैं आप कढे नंदनंदन, सोहैं चढ़े उपमांन बिसेषैं ।।
रीझि रही अपनैं अपनैं मन, देषि सबै प्रगटैं ज्यों असेषैं ।
कोरि चकोरनकी चित चाह, रही जैसें चौदहैं[1] चंदके देषैं ।। १४

अथ सठलक्षन

दोहा – मीठी बांनी[2] मुषि लयें, हियें कपट पहचांनि[3] ।
दूषनसौं दूरि न रहै, सो सठनायक जांनि ।। १५

कवित्त – ऐसी यहं[4] रीतिसौं लुभांनै[5] बलि बारंबार,
कहीहू न[6] जात सुनी बात न जे चलियां ।
रावरै तौ रीझि इन बातनकी परी आय,
चंद चाहि चंदमुषी मिलियां न गलियां ।
भीजी अनुराग उन अंगनकैं राग अंग,
अंग प्रति राग जाकैं रंगरीझ छलियां ।
चन्द्रिकान चलियां चकोरूंकी[7] अवलियां[8] वे[9],
चौकीदार[10] भई हैं चंबेलिनकी[11] कलियां ।। १६

अथ धृष्टलक्षन

दोहा – गारि-मारकी त्रास सब, नहीं अंग लवलेस ।
पेस मिलैं[12] सब जाइगां, लषौ धृष्टि इहि भेस ।। १७

यथा – आजु कहौं[13] फिरि काल्हि कहौं, परसौंकौं, कहौं बिन बातन जीहैं ।
केते षिजैं बरजैं लरजैं, तरजैं न तऊ अरजैं समही हैं[14] ।
लाज न लेस कुलाज कलेस न, ऐसी हमेस न रीति नई हैं ।
प्रीति सरीति[15] कितेकनसौं[16], पै लियें फिरैं चाहि चकोरनकी हैं ।।१८

---

१४. १ ख. चोवहैं ।

१५. २ ख. वानी । ग. बानी । ३ ख. ग. पहिचानि ।

१६. ४ ख. यहै । ग. यह । ५ ख. लुभाने । ६ ख. रहीहून । ७ ख. चकोरोकी । ८ ख अवलीयां । ९ ख. चे । १० ख. चोकीदार । ११ ख. चबेलीनिकी ।

१७. १२ ख. मिले । १३ ख. कहो । १४ ख. तन ऊपर जैसे मही है । १५ ख. सी रीति । १६ ख. कितेकनिसों ।

अथ पद्मनादिक नायकाबर्नन

दोहा – यकु तौ[1] पद्मनि कहत हैं, दुतिय[2] चित्रनी होइ।
त्रितिय[3] हस्तनी चतुर्थी, संषनि जांनहुं सोइ ॥ १९

अथ पद्मनीलक्षन

दोहा – कनकबरन कौंधनि[4] हसनि, चितवनि चितकी वोर[5]।
पद्मनि सलज सरूप त्रिय, सौरभ 'परत झकोर' ॥ २०

यथा – आजु मैं देषी है[6] गोपसुता मुष, देषैंतें चन्द्रमा फीकौ ह्वै[7] जोतो।
गोरे गुलावकी आबहूतें, गहराई गुराईकें संग समोतो ॥
सिंधुसुता सम ताकैं समांन, सो वा बलिकौ रंग और अन्होतो।
होती जो कुंदनकै अंग बास जौ, जौ कह्व[8] केतकी कांटौ न होतो ॥ २१

अथ चित्रनीलक्षन

दोहा – बात[9] गात मति जासमैं, अति विचित्र गति होय।
तासौं कहियत चित्रनी, परम पुरानें लोय ॥ २२

यथा – आजु मुषचंद[10] पर रोचन-रचित भाल,
अंही ब्रजचंदके विकांवनि सिताबकी।
छाजति छबीली छबि बरनी न जात मोपै[11],
हरनी हितूजनके हियके हिताबकी।
रतिकी न रंभाकी न सची उरबसीकी न,
वारि-वारि डारियत उपमा किताबकी।
गालिब गुलावकी न पंकजके आबकी न,
रही आफताबकी न ताब महताबकी ॥ २३

अथ हस्तनीलक्षन

दोहा – चित चंचल गति मंद सब, भारे अंग बषांनि।
ताहि हस्तनी कहत हैं, चतुर चित्त पहचांनि ॥ २४

---

१९. १ ख. इकतौं। ग. यकुतो। २ ख दुतीय। ३ ख. तत्रतिय।
२०. ४ ख. कौंधरि। ५ ख. चितकी चोर।
२१. ६ ग. हैं। ७ ग. है। ८ ग. कहुं।
२२. ९ ख. वात।
२३. १० ख. मुषचंद्र। ११ ख. मोपें।

यथा – सरदके चन्द्रमासौ राजत बदन - चंद,
छूटे केसपास भारे लंक बिसतारे[1] हैं।
कंचनके कुंभ जैसे[2] उंनत[3] उरोज अति,
भारे भारे अंग गहि भायकै उतारे हैं।
चितवनि हसनि चलनि चातुरीसौं चारु,
ऐसी उपमांनि[4] निरधार न बिचारे हैं[5]।
मांन मद[6] परवे गुमांन गति परवे सो,
तेरी गति गरवे गयंद लषि हारे हैं ॥ २५

अथ संषिनीलक्षन

दोहा – कोप-कपट-परवीन-तन, तीछन लोम अपार।
अति करूप सो संषिनी, कबिजन कहत विचार ॥ २६

यथा – भूरे त्यों[7] केस कुवासकी[8] भूरिसौं[9], लोम भरे तन सूळ सरे हैं।
भूलि हसै न रसै रससौं[10], लषि लागत हैं[11] दुष कासौं भरे हैं॥
जा तनके लगे पौंन[12] कौं पाइ, सिराइकैं जे छितिपै बितरे हैं।
चाहि भुलाइ[13] भुकें दुषहाल, बिहाल ह्वै कैं घनैं भौर परे[14] हैं ॥ २७

इति श्रीनेहतरंगे रावराजा श्रीबुद्धसिंह सुरचते अनुकूलादि नाइक-
पद्मनादिक नाइका निरूपणं नांम प्रथमो तरंग।

*

अथ दरसन

दोहा – अब दरसन सुनि च्यार बिधि[15], इक साक्षात सुरूप[16]।
दुतिय श्रवन त्रितिय[17] सुपन, चौथौ[18] चित्र अनूप ॥ २८

अथ साष्यातदरसनलक्षन

पिव प्यारी प्यारी पिया, देषैं[19] अपनैं नैंन[20]।
सो दरसन साष्यात कहि, तन मन सब सुख दैंन[21] ॥ २९

२५. १ ख. विसतारे। २ ख. अैसे। ३ ख उन्नत। ४ ख. उपमांन। ५ ख. विचारे हैं।
६ ख. मदन।
२७. ७ ख. ग. भ्हरेत्यौं। ८ ख. कुवासकी। ९ ख. भूरिसो। १० ग. रससौ।
११ ख. है। १२ ग. पौन। १३ ख. भुलाई। ग. लुभाई हुकै। १४ ग. परैं।
२८. १५ ख. विधि। १६ ख. ग. सरूप। १७ ख. त्रतिय। १८ ख. चोथो।
२९ १९ ख. ग. देखे। २० ख. नेन। २१ ख. देन।

अथ श्रीराधाजूकौ साक्षातदरसन

आजु लषे ह्वै ते य्या मगकौं, वह ता छिन तैं[1] छकि नैंना रहे हैं।
पार परौसी[2] सबै[3] घरके कहिबे, सुनबे सबहीकौं[4] कहे[5] हैं।।
फूलि है धौं घर आंपनके[6] लगि[7], सोच संकोच बढ़े बन ये हैं।
क्यौं[8] बृजमैं बसिबौ[9] सजनी, बृजचंद तौ चौथिकौ[10] चंद भये हैं।। ३०

अथ श्रीकृस्नकौ साक्षातदरसन

यथा – आजु लषी वह तीर कालिंद्रीकैं[11], चंद्रिका रंगसौं अंगभरी सी।
छूटी लटैं[12] उघटैं[13] मुषपै[14], न घटैं[15] न मनौजकें[16] मंत्रफुरी सी।।
वोढनी लाल हरचो लहंगा, सु करी मांनौं चंद्रमा चीरि धरी सी।
रूपकी लूटि पें जूटि परी, सु परी असमांनसौं[17] छूटि परी सी।।३१

अथ श्रवनदरसन लक्षन

दोहा – सुनत अंग प्रति अंगकी, दरसै[18] गति[19] मति आइ।
श्रवनदरस ताकौं[20] कहैं, कबिता[21] कबि ता गाइ[22]।। ३२

अथ श्रीराधिकाकौ श्रवनदरसन

यथा – जा दिनतैं[23] बलि रावरी बात, कही मैं[24] कितेकनिसौं[25] रस सौंहैं[26]।
एक अटारी रहै पग[27] रीझि, घटै न मिटै न लटै बरज्यौं[28] हैं।।
चात्रगसी[29] सफरीकें सलूक, भई नफरी अफरी अर त्यौं[30] हैं।
देषिबे राउरकौं[31] तरसैं, दरसैं कितह्वै परसैं कित ह्वै हैं।। ३३

---

३०. १ ख. तें। २ ख. ग. परोसी। ३ ख. सबे। ४ ख. को। ५ ख. कहै।
६ ख. आपनके, ग. आपनिके। ७ ख. गित। ८ ख. क्यों। ९ ग. वसिबो।
१० ख. चोथि को।

३१. ११ ख. कालिंद्रीके। १२ ख. लटें। १३ ख. उघटें। १४ ख. मुख पे।
१५ ख. घटे। १६ ख. मनोजकें। १७ ख. असमांनसों।

३२. १८ ख. दरसे। १९ ख. गति। २० ख. ताकों। २१ ख. कविता।
२२ ख. गाय।

३३. २३ ख. दिनसें। २४ ख. में। २५ ख. निसों। २६ ख. सोहैं। २७ ख. पगि।
२८ ख. बरज्यों। २९ ख. चात्रकसी। ३० ख. त्यों। ३१ ख. ग. रावरे।

अथ श्रीकृस्नकौ श्रवनदरसन

यथा – पांनकौ षांन विधांनकौ[1] मंजन, भूले सुगंध लगायबौ भोगी ।
ध्यांनकौ साच गुमांनकौ धारन, ज्यांनकौ ग्यांन करयो जिम जोगी ।
प्रेमपगेसे जगेसे षगेसे, रंगे उमगेसे लगेसे ,बिवोगी[2] ।
अैसे भए बलि बात सुनैं सुन, जांनिए देषैं कहा गति होगी ।। ३४

अथ सुप्नदरसन लक्षन

दोहा – परम भांवतौ[3] मित्र तह, सुपनैं दरसै आय ।
सुपनदरस तासौं[4] कहैं, सुभग रसनि सरसाय ।। ३५

अथ श्रीराधिकाकौं सुप्नदरसन

यथा – कोरि कलानिधि आधिक आज, लषैं भरी[5] नीदमैं त्यौं[6] अभिलाषैं[7] ।
चक्रत[8] चौंप[9] चकोरनकी[10] कियें, औरकी[11] उपम[12] चूरिसी नांषै ।।
सो छबि यौं सरसी सरसी, दरसैं अनभौ[13] इन मो पल पांषैं ।
लागी हुती सुघरी सुघरी, उघरी कित बैंरनि बैरनि[14] आषैं ।। ३६

अथ श्रीकृस्नको सुप्नदरसन

यथा – चंद अमंदसी चंद्रिकासी लषी, सोवत ही जोही वाही अहीरी ।
लागसी लालचसी गुन आधसी, ऊपमता नही जात कही री ।।
रंगभरीसो हरीसी परीसो, षरी सुथरी अलकैं बिथुरी री ।
एंन[15] सगी री सो रैंनि[16] जगी लगी पापनी ए पलकैं[17] न रही री ।। ३७

अथ चित्रदरसन लक्षन

दोहा – चित्र देषि निज मित्रकौ, मनसुष पावै मित्र ।
लहियै[18] हित जामैं अधिक, कहियै[19] दरसन चित्र ।। ३८

---

३४. १ ख. को । २ ग. बिवोगी ।
३५. ३ ख. भावतो, ग. भावतौ । ४ ख. सो ।
३६. ५ ख. भर । ६ ख. त्यों । ७ ख. अभिलाषें । ८ ख. चक्रित । ९ ख. चोप । १० ख. चकोरनिकी । ११ ख. ओरकी । १२ ख. उप्पम । १३ ख. अनभो । १४ वैंरनि ।
३७. १५ ख. देन । १६ ख. रैन । १७ ख. पलकें ।
३८. १८ ख. लहियै । १९ ख. कहियै ।

अथ श्रीराधिकाकौं चितदरसन

यथा– बृंदाबनचंदकी[1] सबीसौं[2] मन मोहित कैं[3] ,
केते अभिलाषके हुलास ह्वै लसै रही ।
नैंननिसौं[4] नैंननि लगाइ[5] टक[6] लाइ चढि ,
चाइ चौंप चौगुनी[7] उपाइ[8] उमगै रही ।
रीझि रस भीजिकैं दरस मतिवारी[9] ह्वै कैं ,
मैंनकी[10] तरंगनि तुरत तन तै रही ।
पत्र गहि अत्र फुरे मंत्र जंत्र तंत्र सम ,
चित्र देषें[11] मित्रकौ बिचित्र[12] आपु ह्वै रही ।। ३९

अथ श्रीकृष्णकौ चित्रदरसन

यथा– देह चपलासी सिंधुवारी अबलासी[13] सौहै[14] ,
हांसी चंद्रिकासौं नांही चंद्रिका लजायनौं ।
अलकनि ब्याल मोतीमाल लंक[15] हाल लषै[16] ,
जा तन बिसाल[17] अति सोभाकौ सराहनौं[18] ।
केती अंग-अंग रंग रंगनकै[19] संग केती ,
आवैं न तरंग लाग्यौ आउत[20] उराहनौं ।
रूप उन हेरा नहि आवैं उनहेरा यातैं ,
मैंघौं[21] भयौ बृजमैं[22] चतेराकौ बिसाहनौं[23] ।। ४०

इति श्री नेहतरंगे राउराजा श्रीबुद्धसिंघ सुरचते चतुरबिधि दरसन निरूपण नांम दुतियौ तरंग

*

अथ नायकाभेद बर्नन

दोहा– मुगधा मध्या जानियें, तीजी प्रोढा नारि ।
च्यारि-च्यारि[24] विधि[25] एककी, कबिता मत निरधारि ।। ४१

---

३९. १ ख. व्रंदावनचंदकी । २ ख. सखीसौं । ३ ख. मन मोहितके । ४ नैंननिसौं । ५ ख. लगाय । ६ ख. छटक । ७ ख. चोगुनी । ८ ख. उपायई । ग. उपायइ । ९ ख. मतवारी । १० ख. मेंनकी । ११ ख. देखें । १२ ख. ग. विचित्र ।

४०. १३ ख. अवलासी । १४ ख. सोहें । १५ लक । १६ ख. लखे । १७ ख. विशाल । ग. विसाल । १८ ख. सराहनों–ग. सराहनौ । १९ ख. रंगनकौ । २० ख. आवत । २१ ख. मेघों । २२ ख. व्रजमें । ग. व्रजमैं । २३ ख. विसाहनों ।

४१. २४ ख. च्यार-च्यार । २५ ख. विधि ।

अथ मुगधाभेद

दोहा– नवल वधू[1] नवजोबनां,[2] नबलअनंगा[3] जांनि ।
लज्जा-प्राय-रता-तिया, च्यारि भांति पहचांनि ॥ ४२

अथ नवलबधू मुगधालक्षन

दोहा– जाकौं कहि[4] नवलबधु[5], बढ़ै अंग दिन-जोति ।
चढि-चढि त्यौं[6] ससि-बर-कलां, ज्यौं-ज्यौं बढती होति ॥ ४३

यथा–अंगनसौं इत रंगनसौं, उभलै अंग चांदिनीसी छबि छांई ।
नैननितैं प्रति - बैंननितैं[7], सक सैंननितैं सरसैं सरसांई ।
अैसी भई दिन च्यारिकतैं[8], बृजचंदहूकी मतिकी दुरसांई ।
देषत दूनी कलासी चढ़ै सु, बढै दिन द्वैजके चंदकी नांई ॥ ४४

अथ नवजोबनां मुगधालक्षन

दोहा– जो नवजोबन बरनिये, मुगधाकौं यह रंग ।
सिसुताई निकसैं प्रगट, जोबन प्रगटै अंग ॥ ४५

यथा– अब ही तैं होत चली उकसौंही[9] छतियां ये ,
बतियां हसौंही[10] षूब सूरती सषत पैं ।
कटि पर लूटि परी उन्नत नितंबनकी[11] ,
जूट परी छबि कोर - कोरक नषत पैं ।
तेरे अंग जाहर जवाहरकी जोति पर ,
गालिब गुलाब कौंन चंपाके बषत पैं ।
फरकत नैंननसौं लषती कहूंसौं लषि ,
सषती परैगी[12] रबि[13] चंदके तषत पैं ॥ ४६

अथ नवलअनंगा मुगधालक्षन

दोहा– नवल-अनंगा होति तिय, मुगधा अति सरसात ।
षेलनि बोलनि चलनि मृदु, कांमकथांनि[14] डरात ॥ ४७

---

४२. १ ख. वधू । २ ख. नवजोवनां । ३ ख' नवला-अनंगा ।
४३. ४ ख. कहियत । ५ ख. ग. नवलवधू । ६ ख. त्यों । ग. त्यौ ।
४४. ७ ख. वेननितें । ८ ख. च्यारकतें ।
४६. ९ ख. उकसींहीं । ग. उकसोंही । १० ख. हेसोही । ११ ख. नितंवकी ।
१२ ख. परगी । १३. ख. ग. रवि ।
४७. १४ ख. कामकलानि ।

यथा–लागी भलैं[1] बृजचंदके नैंननि, या छबि ता लगि नैंननि भीनी ।
यौं[2] प्रगटी अंग औरै[3] कछू, लषि नाजकता निज लंक लै लीनी ॥
पास परोस कहा कियौं तैं[4] बलि, अैसै प्रकास अकासलौं[5] लीनी ।
तैं[6] उन नैंन-पतंगनिकौं[7] दिन च्यारितैं[8] देहरी-दीपक कीनी ॥ ४८

अथ लज्जा-प्राय-रता मुगधालक्षन

दोहा– लज्जा-प्राय-रता तिया, कहिए इहि विधि आंनि ।
सुरत करै लज्जा लये, या लक्षिन[9] सौं जांनि ॥ ४९

यथा–आवै नहीं नवला नव लालकी, सेज सषीजन केतौ जकीसी ।
नींठि बसीठकी दीठिसौं पीठि दै[10], सोई सकीसी जकीसी थकीसी ॥
नीबीकौं[11] लाल गह्यौ करमैं, नष हीरनकी जहां जोति ढकीसी ।
मांनौ[12] छप्यौ रवि[13] कंजकली, चहुं वोर[14] तरैंया रही उझकीसी ॥ ५०

अथ मुगधाकौ सुरत

यथा–आनी अलीन छली छलसौं, मिलि सोहत चंचलासी उघरीसी ।
पीय समैं[15] परिरंभनकै, परजंकपैं[16] लंकको लूरि परीसी[17] ॥
यौं छबिसौं परसैं दरसैं, सरसैं इन उपमताई[18] हरीसी ।
ज्यौं[19] जबरी-जबरी जकरी, बसरी मनौं जालपरी[20] सफरीसी ॥ ५१

अथ मुगधाकौ सुरतांत

यथा–अैसैं लसैं रदनंछित[21] तैं, उठैं प्रात समैं छबि चंदकी मोहैं ।
भौंहैं[22] कलंक सुधा अधरामृत, नैंन कुरंगनकी[23] गति जोहैं ॥

---

४८. १ ख. भले । २ ख. दों । ३ ख. ओरें । ४ ख. कियोंतो । ५ ख. अकासलों
६ ख. ते । ७ ख. नैन पतंगन । ८ ख. च्यारतें ।

४९. ९ ख. लक्षन ।

५०. १० ख. दें । ११ ख. नीवीको । १२ ख मांनों । १३ ख. रवि ।
१४ ख. चवुं ओर । ग. चहुं वौर ।

५१. १५ ख. समें । १६ ख. परजंकपें । १७ ख. परिसी । १८ ख. ग. उप्पमताई ।
१९ ख. ज्यों । २० ख. लाजपरी ।

५२. २१ ख. रदनछित । २२ ख. भोहें । २३ ख. कुरंगनकी ।

सिंधु कढ्यौ सो[1] कढ्यौं इह रैंनसौं[2], जात अकासहि अैसें रुकौं[3] है ।
बांधी ये[4] ज्यौं अलिमाल मनौं, अटक्यौ जुलफौंकी जंजीरनसौं है ।। ५२

इति मुगधा

अथ मध्याभेदकथनं

दोहा– मध्या आरुढ़ - जोबनां, प्रगलभवचना नारि ।
प्रादरभूतमनोभवा[5], सुरतबिचित्रा[6] च्यारि ।। ५३

अथ मध्या-आरूढ़-जोबनांलक्षन

दोहा– मध्या आरूढ़ - जोबनां, अैसें बरनि बिसेष ।
सरद-सुधाधर मुष-दरस, अंग अंग छबि न असेष ।। ५४

यथा– थाल नभ आइकें[7] अक्षित नक्षित्र मेल्हि[8],
सोहै सुधा नेहसौं सनेह छबिधारी[9] हैं ।
सोलै-कला-बाती[10] सांझबंदन सुहाती सिषा[11],
चंद्रिका ज्यौं काजर कलंक उनहारी हैं ।
उदै ओर अस्ताचल सोही[12] दुहूंओर[13] करि,
सषी साथ जोरी सो चकोरी परचारी है ।
राधे सुनि रावरे बदन पर बारबार[14],
भारतीनै चंदमय आरती उतारी है ।। ५५

अथ मध्या-प्रगलभ-बचनां लक्षनं

दोहा– प्रगलभ - बचनां[15] जांनिये, जाकी अैसी रीति ।
बचनन मांझ उरांहनौं[16], देइ दिषावै प्रीति ।। ५६

यथा– सालत रसाल मालतीकी माल लालन,
कटीली बनलतांनकै लालच लटे रह्यौ ।
केतक[17] समैकौं सुष केतक-कलीसौं भूलि,
सोनजुही मांझ सांझ - सवारे सटे रहौं ।

---

५२. १ ख. कढ्योसो । २ ख. रैंनिसौं । ३ ख. ग. रुको । ४ ख. बांधियै ।
५३. ५ ख. ग. प्रादुरभूत–मनोभवा । ६ ख. सुरत-विचित्रा ।
५५. ७ ख. आनन । ग. आइकै । ८ ख. मेलो । ९ ख. छविधारी । १० ख. सोलै-कलावाली । ११ ख. सिधा । १२ ख. सोई । १३ ख. वरी हूं । १४ ख. वारवार ;
५६. १५ ख. प्रगलभ वचनां । १६ ख. उराहनौं । १७ ख. केतेक ।

श्रैसी बलि काकै मंति कुंदकलिकाकें काज ,
नेह करि कमलकलीसौं उचटे रहौ ।
लेहु अलिनायक[1] असोस निज सीस यह ,
निपट कपटकी लपट लपटे रहौ ।। ५७

अथ मध्या–प्रादुर्भूत–मनोभवालक्षन

दोहा– अंग-अंग छबि छाइकें, रहै जु जोबन आइ[2] ।
प्रादुर्भूत - मनोभवा, ताहि कहैं कबिराइ[3] ।। ५८

यथा–काजरकें षरसांन चढ़ी वै[4], बढी अंषिया भ्रकुटी चढि बाढी ।
गात गुराईकै रंगभरी सो, छटी कटि लूटि नितंबनि चाढ़ी ,
आय अचांनक दीठि परी, सु वही[5] मग कुंज कालिंद्री कैं ठाढी ।
चंचलासी कैधौं चंद्रिकासी, कि चिराकसी चंद्रसो चीरिकैं काढी ।। ५९

अथ मध्या-सुरत-बिचित्रालक्षन

दोहा– चतुर चाहि गति रति-समैं, बिबधि भाय रति-रीति[6] ।
रति-बिचित्र तासौं कहैं, कीनैं पतिबस[7] प्रीति ।। ६०

यथा–आजु लसै रतिरंग समै, सरसैं केती[8] अंग-तरंगनि झोकै ,
आंनन आननसौं उरसौं उर रीझि रही छबि ता अवलोकै ।
ता समै मांग मिल्यौ लरबंदीसौं, बीचि षुलैं उपमांनकी नोकें ,
भालपैं टीका जरावकौं मांनो, रह्यो रबि राहकी राहकौं रोकें[9] ।। ६१

अथ मध्या-सुरतांत

यथा– बिबधि-कलांन केलि कीनी रसभीनी अति ,
रंग-रस-सनी सब रजनी[10] बितै[11] रही ।
अरसौंहै गात हरि प्रात उठि जात लषि ,
तियकी बदन - दुति जनैं कौ कितैं रहो ।

---

५७. १ ख. अलिनाइक ।
५८. २ ख. आइ । ३ ख. कविराई । ग. कविराइ ।
५९. ४ ख. वे । ग. वैबड़ी । ५ ख. सुबही ।
६०. ६ ख. रति-प्रीति । ७ ख. पतिवस ।
६१. ८ ख. कैती । ९ ख. रोके । १० ख. जगनी । ११ ख. वितै ।

फिरि मिलिबेकों कह्यौ चाहत[1] कह्यौ न जात ,
भई अति छीन[2] पल ही में तनतै रही ।
तरुन - तपन - ताप - तापत कुरंग रुचि ,
लोचन न लाइ[3] मुषचंदही[4] चितै रही ।। ६२

अथ मध्या-धीरालक्षन[5]

दोहा— पतिकौं साअपराध लषि, कहै जु कछुक जताय ।
मध्या - धीरा नाइका[6], तासौं कहत बताय ।। ६३

यथा— झिलि-झिलि बृंदन[7] सुजात[8] अरिबिंदनकै ,
कुंदन-कमोदनकें मोद अनुकूले हौ ।
कहूं[9] अनकूले कहूं डूले[10] हौं सुबास-बस ,
कहूं रसलोभकें सुभाइ लगि भूले हौ ।
सौरभ-सुरंभन[11] सुजात मालतीन मिलि ,
हिए न[12] बिहार अनुराग निस फूले हौ ।
कैसें आजु सेवन सुगंध तजि सेवतीकौं ,
किन भ्रम[13] बेलिन भ्रमर आजु भूले हौ ।। ६४

अथ मध्या-अधीरा

दोहा— पियसौं अति सतराइकै, बांनी कहत न धीर ।
कविजन तासौं कहत हैं, सो नायका अधीर ।। ६५

यथा— हासके बिलासनतैं[14] चंद्रिका - उजासनतैं ,
प्रभाके प्रकासनतैं जेब जुनियतु है ।
जोबन - तरंगनतैं सोभाके प्रसंगनतैं ,
रंग - प्रति - रंगन अनंग लुनियतु है ।

---

६२. १ ख. रह्यो चाहत । २ ख. छीनि । ३ ख. लोचन न चावक ।
४ ख. मुषचंदहि । ५ ख. लक्षणं ।

६३. ६ ख. मध्याधीरा नायका ।

६४. ७ ख. झिलि-झिलि वृंदन । ८ ख. सु जानत । ९ ख. कहुँ । १० ख. वूले ।
११ ख. ग. सोरभ-सुरंभन । १२ ख. हिरान । १३ ग. किम भ्रम ।

६६. १४ ख. बिलासनि ।

भौंहन - कमांननतैं तीषे - नैन - बाननतैं ,
कांनन - कसीसनतैं कैसे गुनियतु हैं ।
साधे केती भांतिन समाधे केते साधनसौं ,
आजु - काल्हि राधेनैं अराधे सुनियतु है ॥ ६६

अथ मध्या-धीराधीरा लक्षन

दोहा– पियकौं देत उराहनै[1], कछू बिंग्यतें[2] आय ।
धीर - अधीरा कहत हैं, ताहि महा कविराय ॥ ६७

यथा– आजु दरसत परसत यन[3] भाइनसौं[4] ,
सारी राति जागत[5] उंनीदी छबि छै रही ।
कैंधौं[6] काहु[7] जोगनसौं काहूके संजोगनसौं ,
कैंधौं काहू लोगनसौं रिसकैं रिसैं रही ।
मेरी सौंहै मोसौं जौपैं कहौगे न साची देषैं ,
सोभातें सुहातें लाल डोरे विरझै रही ।
हितसौं हरीसी लागी एन बसरीसी सोहैं[8] ,
नेह-नफरीसी आंषैं सफरीसी ह्वै रही ॥ ६८

॥ इति मध्या ॥

अथ प्रोढ़ाभेदकथन

दोहा– कहि समस्त-रस-कोबिदा, चित्र-बिभ्रंमा[9] जांनि ।
आक्रामति लबधा यहै, प्रोढा[10] च्यारि बषांनि ॥ ६९

अथ समस्त-रसकोबिदालक्षन

दोहा– जो समस्त - रसकोबिदा, ताकौ यहै उदोत ।
जहां[11] रीझि रीझत पिया, तंही[12] रीझ सम होत ॥ ७०

यथा– चपलाइ चौसरं चंबेलि गुन मौंसर ता ,
चंदन मिलन मिलि उपमांसी जौन्हमैं ।

---

६७. १ ग. उराहनो । २ ख. विग्यंतें ।
६८. ३ ख. इन । ४ ख. भाइनीसौं । ५ ख. जागती । ६ ख. केधों । ग. कैंधो ।
७ ख. कहूं । ८ ख. सोंहे ।
६९. ९ ख. ग. चित्र विभ्रमा । १० ख. प्रोढ़ा ।
७०. ११ ख. ग. जहि । १२ ख. ग. ताहि ।

परम प्रकास नेह - दीपक संजोइ दसा ,
बृजके चवाय धूप अगरके हौंनमैं[1] ।
बृंदाबन - चंद - चित आरती उतारि लाज ,
ध्यांन मुषचंद चाइ चंद्रिकाके भौंनमैं[2] ।
फिरि - फिरि साधे इनि नैंननि समाधे वेई ,
तैंही जु अराधे राधे आधीक चितौंनमैं[3] ॥ ७१

अथ प्रोढा-बिचित्र-विभ्रमांलक्षिन

दोहा– सो विचित्र[4] कहि बिभ्रमां, जाकी असी रीति ।
दीपति जाके देहकी, पियहि मिलावैं प्रीति ॥ ७२

यथा–बोलिबौं[5] बोलनिकौ अवलोकिबौ[6], तीषे मनौजके[7] मंत्रसे राषैं ,
छूटी लटैं[8] लग[9] केसरि-खोरि समांन न उप्पमता नहि नाषैं ।
असे अनौषेसे अंगनपैं[10], भ्रमैं[11] भौंर[12] ज्यौं प्रीतमके अभिलाषैं ,
तेरी चढी-चढी आंषिन ऊपर[13], वारौं बडी-बडी पंकज-पाषैं[14] ॥ ७३

अथ प्रोढा-आक्रांमतिलक्षन

दोहा– कहि आक्रामति[15] नायका[16], जाकौ असौं हेत ।
नायक बसि कीनौं[17] निपट, मन-बच-क्रमनि समेत ॥ ७४

यथा– आजु बलि सोहै असैं सारी बृजसषिनमैं ,
उझली परत सोभा भारो अनुरागकी ।
सारी जालदार सो किनारी जरतारीदार ,
छूटे केसपास सोहैं लंक लगलागकी ।
तापैं षुली महदी महाउर[18] सरस रंग ,
सौतिनके जोतिवेके जंत्र तकतागकी ।
नहरैं सुधाकी गति गहरैं अनेक मांनौ ,
छहरैं छिपाकरतैं लहरैं सुहागकी ॥ ७५

७१. १ ख. होंनमें । २ ख. भोंनमैं । ३ ख. ग. चितोनमैं ।
७२. ४ ख. विचित्र ।
७३. ५ ख. ग. बोलिबो । ६ ख. अवलोकिवो । ७ ख. मनोजके । ८ ख. लटें । ९ ख. लगि । १० ख. अंगनपे । ११ ख. भ्रमे । १२ ख. भोंर । १३ ख. उपर । १४ ग. पंकज पांषे ।
७४. १५ ख. आक्रामनि । १६ ख. नाइका । १७ ख. जानों । ग. कीनौ
१८ ख. महावर ।

अथ प्रोढा-लबधातिय लक्षन

दोहा– तिय लबधा सो जानिए[1], बरनत[2] सुकबि[3] बषांन ।
कुळ - लज्जा मांनत सकल, दीपति देव समांन ।। ७६

यथा– आजु छबि देत बलि राधे बृजचंद साथ ,
अंग - अंग उमगत जोबनकी जौरेंतें[4] ।
केसरिकै रंग नित रंग सोहै केतकीके ,
कमल गुलाब कहा चंपक निहोरेंतें ।
अैसें लषि रीझिकें लसत[5] रीझि कुंज-भौंन ,
उप्पम न[6] आवै कछु मेरे चित चोरेंतें ।
चांदिनी सुदेस-मुष-चंदकौं[7] निहारि करि ,
चाकरसे ह्वै चले चकोर चहूँ ओरेंतें[8] ।। ७७

अथ प्रोढ़ासुरत

यथा– सोहैं परजंक पर प्रीतमकैं संग अैसे ,
राजै अंग-अंग प्रति आंनद हिल्यौसौ है ।
बिथुरत[9] अलक सलिल श्रमजल छूटि ,
हार उर टूटि अंग-अंगन मिल्यौसौ है ।
अैसें बिपरीति समैं आंननकी छबि दोन्यौं ,
आय उपमांसौं इन नेंननि तुल्यौंसौ है ।
कलाकैं षुल्यौसौ चंद्रिकासौं[10] उभल्यौंसौ ,
ज्यौं चल्यौसौ रबि राहु पर चंद्रमा मिल्यौसौ है ।। ७८

अथ प्रोढ़ासुरतांत

यथा– रैंनिकी जागी सो प्रात जगैं, षुले हारसौं अंगपै ओप बिजैंठौ ।
यौं बिथुरी अलकैं उरपैं, अलकावलि एक उरोज अमैंठौ ।।
पांवन जानि अपांवनकौंसो, यहै जिय जानि मनोरथ अैठौ ।
संभुकै सीस महाबिष हाल, मनौं रुष ब्याल बिहाल ह्वै बैठौ ।।७९

---

७६. १ ख. जानियें । २ ख. वरनत । ३ ख सुकवि ।
७७. ४ ख. जोरते । ५ ख. लसन् । ६ ख. उप्पमा न । ७ ख. सुदेषमुखचंदकौं ।
८ ग. चिहुंग्रोरेतें ।
७८. ९ बिथुरक । १० ख. चंद्रकासौं ।

अथ प्रोढ़ा-धीरालक्षन

दोहा– प्रोढ़ा - धीरा - नायका[1], धीरज लयें अछेह ।
कछु रिस[2] प्रगटै पीयकौ[3], और ठौर लषि नेह ।। ८०

यथा– मोरनके छंद छूटि जटी[4], षुलि जावक भालमैं लोचन लाये ।
अंबर पीत बघंबर ज्यौं, अंगराग बिभूतिनसौं छबि छाये ।।
जूटि भजंगम त्यौं अलकें, मिलि चंदसै भाल अमी बरसाये ।
रीझि कहौं पेस सबै, मेरे नेह सुंदेस महेस ह्वै आये ।। ८१

अथ प्र ढ़ा-अधीरालक्षन

दोहा– पिय अपराधी जांनिकें, रिस करि रूषी होइ ।
प्रोढा ताहि अधीर तब, बरनत हैं सब कोइ ।। ८२

यथा– साची कहौ जाकी मांनत सौंह सों, कौंनकै[5] नेह रहे सरसे हौ ।
रैनि जगी अंषिया तरजी, बिरझी रंग अंगनसौं अरसे हौ ।।
जावो जहां मिलि आए तहां, हमकौं इन बातनिसौं परसे हौ ।
चंद ह्वैकें कितहू दरसे, यतकौं[6] रबि[7] ह्वैकरिकें दरसे हौ ।। ८३

अथ प्रोढा-धीरा-अधीरालक्षन

दोहा– धीरज बि अधीरके[8], कछू कहति जो बैंन[9] ।
प्रोढा-धीरा-धीर तिह[10], कहि बरनत कबि तैंन[11] ।। ८४

यथा– लोचन वै बरही जनके, अति रीझि रहें छकिसे छबि सौंहैं ।
रैंनि रहे मिलिकें उतही, उमडे फिरि कौंन हितू जति सौंहैं[12] ।।
आय यतै दरसे सरसे. घनस्यांम यौं कौन गही गति सौंहैं ।
आजु बडी-बडी बूंदनसौं, गरजे कित बरसे कितहू हौंहैं ।। ८५

इति श्रीनेहतरंगे रावराजा श्रीबुद्धसिंघ सुरचते नायका मुग्धा-मध्या-प्रोढा-धीरादि-भेद निरूपणं नांम त्रितियो[13] तरंग

---

८०. १ ख. ग. प्रौढ़ा-धीरा-नायका । २ ख. रस । ३ ग. पीयको ।
८१. ४ ख. जटा ।
८३. ५ ख. कोंनकै । ग. कौनकै । ६ ख. इतकों । ७ ख. रवि ।
८४. ८ ख. धीरा बहुर अधीर कै । ९ ख. बेन । १० ख. तीहि । ग. तिंहि । ११ ख. तेन ।
८५. १२ ग. सोहै । १३ ख. तृतीयो । ग. त्रितयो ।

अथ अष्ट-नायकाबनंन[1]

दोहा— स्वाधिनपतिका उतका[2], बासकसज्जा[3] जांनि ।
प्रोषितपतिका षंडिता, अभिसंधिता बषांनि ।। ८६

दोहा— बहुरि बिप्रलबधा अवर, अभिसारिका अनूप ।
अष्ट नायका ये सकल, बरनत समय सरूप ।। ८७

अब क्रमसौं[4] लक्षि लक्षिन कहत है

अथ स्वाधिनपतिकालक्षन

दोहा— पिय जाके गुनसौं बध्यौं, निसदिन रहै अधान ।
स्वाधिनपतिका ताहि कहि, बरनत सबै प्रबीन ।। ८८

यथा— अंगके ढंग उपंगके अंगनि, हासी तरंगनके संग तैसें ।
भूलें नही अलकें भ्रकुटी न, ललाटपैं केसरिषोरि हमैसें ।।
और सबै ब्रजकी जुवती, नहि हेरत हैं ब्रजचंद अनेंसें ।
ज्यौं मुषचंदकौं चाहिकें नैनन[5], चांहै चकोर नक्षित्रनि[6] जैसें ।। ८९

अथ उत्कंठितालक्षन

दोहा— जोवै अवधि - संकेतकौं, मिलन-वननकौं[7] जोइ ।
कहि तासौं उत्कंठिता, परम पुरांनें लोइ ।। ९०

यथा—चंद्रिकासी अबला चपलासी, लषै कमलासी सो सोभा लगीसी ।
सारी हरि[8] गहरैं[9] रंगसौं, उझलीसी गुराई परैं उमगीसी ।।
लाषौं मनौंरथकीसी[10] मिली, रही आंवनि[11] लालकें आषौं परीसी ।
चौंकी[12] चकीसी, जकीसी बकीसी, टगी अटकीसी गढी है ठगीसी ।। ९१

---

८६. १ ख. नायका वर्णनं । २ ख. उत्तका ।
ख. वासकसज्जा । ४ ग. क्रमसौ ।

८९. ५ ख. नेंतन । ६ ख. नक्षत्रनि ।

९०. ७ ख. मिलन वनकों । ग. मिलन वननकों ।

९१. ८ ख. ग. हरी । ९ ख. गहरे । १० ख. मनोरथकीसी । ११ ख. आंवन ।
ग. आवन । १२ ख. चोकें ।

अथ बासकसज्जालक्षन

दोहा– आगम आवन पीयकौ[1], जो तिय सजति सिंगार ।
बासकसज्जा कहत हैं, तासौं कबि निरधार ॥ ६२

यथा– सौंधै[2] करि मंजन[3] सुधारे केसपास भारे ,
धारे अंग - अंगन जलूसनके चांवडे ।
चीर जालदार मिलि उझलत ओप घनें ,
ठौर - ठौर[4] चंपकके बृंदन[5] कनांवडे ।
आज असैं आंवन तिहौर पर बृजचंद[6] ,
बढ़ि चले सौतिनतें[7] मगज अगांवडे ।
राजि[8] राषे उप्पम समझि राषे सोभा सर ,
सजि राषे लोचन सरोजनके पांवडे ॥ ६३

अथ प्रोषितपतिकालक्षन

दोहा–पति बिदेस जाकौ बसै, निसिदिन नींद बिहाय[9] ।
ताकौ प्रोषितप्रेयसी, कहि बरनत कबिराय ॥ ६४

यथा– ऊधौ एक[10] सुनिबै[11] है अरज हमारी ओर ,
एते[12] पर उनहू कें मनमै आती है ।
भौन भयौ भाकसीसौ साषसीसौ दिन भयौं[13] ,
राकसीसी रैंनि भई देषें न सुहाती है ।
कहियौ जू एती दई मनमैं जो आवै क्यौंहू[14] ,
देषन जौं पावें केती कहिबे न आती है ।
चढ़ि-चढ़ि नेह-निधि कढि-कढि लाज हम ,
सुषै पांनी सफरी लौं बढि-बढि जाती हैं ॥ ६५

---

६२. १ ग. पीयको ।

६३. २ ख. सोधें । ३ ख. मज्जन । ४ ख ठोर-ठोर । ५ ख. व्रंदन । ६ ख. तिहारे व्रजचंद भारे । ७ ख. सौतिन तिके । ८ ख. रीझ ।

६४. ९ ग. बहाय ।

६५. १० ख. येक । ११ क. सुनिवै । ग. सुनिबे । १२ ख. येते । ४ ख. मौंन भयो भाषसीसो साखसी रैंनि भई राखससो दिन भयो । १४ ख. कहूं ।

अथ षंडितालक्षन

दोहा– और ठौर रति मांनिकैं, पिय आवैं परभात ।
ताहि षंडिता जानिए[1], कहत बिंग्य[2] गहि बात ।। ९६

यथा– लागैं इतैं न झुकैं उतहीं, चित लागैं नहीं जैसे देषे हमैंसे ।
पीक कपोलनि अंजन[3] भाल, साहाल[4] लसैं मिलि तंत्रनि तैसे ।।
सारस-अंगनि आरससे भलैं, आए इतैं मेरे भागनि ऐसे ।
रैंनि जगी इनि आंषिनकौं, किनि कीनें[5] उपाइ धनंतर कैसे ।। ९७

अथ अभिसंधितालक्षन

दोहा– पियकैं मांन मनावतैं, करै अधिक ही मांन ।
पछितावै पीछैं मनैं, अभिसंधिता बषांन ।। ९८

यथा– पाय[6] परैं मनुहारि करीहु, करि बात घनी बहु भांयिन[7] भाष्यौ ।
प्रीति करी उन कोरि उपाइ, तऊ उनकौ हियकौ हित नाष्यौ ।।
कीजे कहा कहिए[8] कहि कौंनसौं, गाढ़ घनौं अपनौं अभिलाष्यौ ।
मैं मतिबौरी रही करि लाज, हहा हरिकौं भरि अंकन राष्यौ ।। ९९

अथ बिप्रलब्धालक्षन

दोहा– कीनैं कौल संकेतकी, सषी बुलावत चाहि ।
आवै पिय पावै नहीं, बिप्रलबध कहि ताहि[9] ।। १००

यथा– छूटे केसपास हारभार लंक लूटैं जात ,
जूटैं जात भौहैं बर छबिता अमंदकी ।
अंग अवधारी सेतसारी मुषचंद मिलि ,
जालदार लहंगा[10] लसत लाग छंदकी ।
कुंज-भौंन[11] जाइ सूनौं[12] पाइकैं संकेत फिरि ,
फि[री] निज भौंन चित चाइनकै मंदकी ।
आसपास आली जात उपमांन चाली जात ,
चांदिनीमैं चाली जात चुगलीसी चंदकी ।। १०१

९६. १ ख- जानियैं । २ ख. विंग । ग. विग्य ।
९७. ३ ख. अंजनि । ४ ख. सुहाल । ५ ख. कोने । ग. कीने ।
९९. ६ ख. पाइं । ७ ख. बहुभाइन । ८ ख. कहियैं ।
१००. ९ ग. ताहि ।
१०१. १० ख. जालदार-लहगा । ११ ख. कुंजभोंन । १२ ख. सूनों ।

अथ अभिसारिकालक्षन

दोहा– सजि सिंगार जो मिलनकौं, जावै पाय चलाय ।
ताहि तिया अभिसारिका, कहत सबै[1] कबिराय ।। १०२

अथ सुकला अभिसारिका

यथा– सौंधे करि मंजन सुधारि केसपास धूप ,
अगर धुपाय गोरैं आंग छबि छैरह्यौ ।
चंदमुष हांसी चंद्रिकासी चांदिनीसी आपु ,
च्यारचौ ओर चाहिकै चकोरौ[2] चित चैरह्यौ[3] ।
तेरे बलि आजु अभिसारके[4] समाज पर ,
पाज उपमांनकी डगन डग दैरह्यौ ।
छत्रपति छत्र लै चढयौ है मनमथ आजु ,
निरषिन छित्रपति[5] छत्रछबि ह्वैरह्यौ ।। १०३

अथ कृस्नाभिसारिका

यथा– काजरसी का[री] निसि करत उज्यारी स्यांम ,
सारी हू न दुरत जुन्ई जालभरे हैं ।
चुहल मचावत नचावत चकोर हंस ,
चटकन चहु चंह्वावत परे षरे हैं[6] ।
ठौर - ठौर भौंरनके भौंरन जगावतसे ,
त्यौं - त्यौं पैंड - पैंड कल - कोलाहल करे हैं ।
कैसै रंगमहललौं सषी साथ पहुंचौंगी[7] ,
मेरे अंग आली आजु मेरैं बैर परे हैं[8] ।। १०४

अथ दिवा अभिसारिका

यथा– चंदमुष अंबर कसूंभी सोहैं अंग मिलि ,
सोहैं जालदारसो किनार जरतारलौं ।
चौंकि-चौंकि[9] चंचल-चकोर-गन चाले जात ,
छूटे केसपास लागे लंक - लग भारलौं ।

---

१०२. १ ख. सवै ।
१०३. २ ख. चकोर । ३ ख. चित वैरह्यौ । ४ ख. अभिसारिके । ५ ख. क्षत्रपति । ग. क्षित्रपति ।
१०४. ६ ख. खरे खरे हैं । ७ ख. पोहचेगी । ग. पहुंचोगी । ८ ख. मेरे ओर परे हैं ।
१०५. ९ ख. चोकि-चोकि ।

आजु अभिसार सोहै ग्रीषम समाज दिन
गुंजि - गुंजि लागे कुंज - कुंजन अपारलौं ।
आसपास च्यारचौ ओर सारैं मग भौंर ह्वै-ह्वै ,
उडि-उडि भौंर भऐ[1] चौंर घरी चारलौं ॥ १०५

इति श्रीनेहतरंगे रावराजा श्रीबुद्धसिंहै सुरचते अष्टनायका-
निरूपणं नांम चतुर्थो तरंग

*

अथ मिलन-स्थांनवर्नन

दोहा– ध्याय[2] सहेली सुबन जल, सूनै घर भय मांनि ।
ब्याधिजनी निस चार हैं, नौंते[3] उत्सव जांनि ॥ १०६

दोहा– मिलन - थांन एही कहैं, मिलैं इहाही[4] ढंग ।
सबही मन वढ़िकैं[5] करैं, राजा - रंक प्रसंग ॥ १०७

अथ ध्यायके घरकौ मिलन

दोहा– मिली ध्यायके भौंनमैं, नदनंदनसौं धाय ।
ज्यौं चलिकैं मनु चंद्रिका, लसै चंद लपटाय ॥ १०८

यथा-- सांझहीसौं ब्रजबालनसौं, कथा-जालनमैं रजनी दै अछूटी ।
फेरि चढै घनकै नभमैं, वाल-ष्यालके हालकी चाल बिछूटी ॥
धाय कह्यौ चलौ मंदिरमैं, तहां राधिके ठाढी है ऊपम लूटी ।
लूटगी[6] देषत ही हरिकैं, रबि चंदकी ज्यौं किरनैं छति[7] छूटी ॥ १०९

अथ सहेलीके घरकौ मिलन

दोहा-- अली सहेलीकैं भुवन, मिली चंद ब्रज आय ।
ज्यौं जुग - राकाके मनौं, चंद - चंद सरसाय ॥ ११०

यथा-- हेरि हसौ बसौ नेहसौं लाल जो, ल्याई हौं या कबितानसी गाई ।
घेरो चकोरन भोरनकौं, अरिबिंदन हू समता कित पाई ॥
सारी मिलै जरतारीकी जालसौं, सो उपमां उरमैं अधिकाई ।
गंगसी टूटिकैं षूटि कला, त्यौंही चंदसौं छूटिकै अंगन आई ॥ १११

---

१०५. १ ख. उमंडि उमं ड भ घरी चारलौं । ग. चौंर घरी चारलौं ।
१०६. २ ख. ग. धाय । ३ ख. न्यौंते । ग. नौंतै ।
१०७. ४ ख. ढंग । ५ ख. वलिकैं । ग. बढ़िकै ।
१०९. ६ ख. ग. जूटगी । ७ ख. ग. छिति ।

अथ सुबनमिलन

दोहा– लसै[1] बिपन-घन-सघनमैं,[2] मिली चंद-ब्रज चाय[3] ।
दंपति छिति ऊपर मनौं, देव-कला दरसाय ॥ ११२

यथा– आंनद हेत घनां-घन-कुंजमैं, राधिके राजत साथन आली ।
आए[4] तहां हरि रीझिसौं भीजि सु देषी छकी लिये रूप अराली ॥
त्यौं मुषतें सितसारी षुलेंतें, वे धाय[5] लिये उपमा या सभाली ।
टूटि उतंग मनौं सिवसीसतें, छूटिकें ज्यौं छिति गंगसी चाली ॥ ११३

अथ जलबिहारकौं मिलन

दोहा– जलबिहारमैं मिलनकी, रहि उपमा यौं जूटि ।
ज्यौं[6] जुग-चंद चकोर-जुग, चषनि-चाहि रहि[7] लूटि ॥ ११४

यथा– रैनिं समैं सलिता मधिमैं, नंदनंदन राधे लसें यौ तिरे हैं[8] ।
सोहैं कमोद नसी सषियां, परसैं अति आंनद-रंगभरे हैं ॥
यौं दुहु-वोरनकी[9] छबितासौं, समाजसौं आषिन बीचि धरे हैं ।
ज्यौं ससि साथ नछित्रनकै, प्रतिबिंब त्यौं छूटि दुहूंउघरे हैं ॥ ११५

अथ सूनें घरको मिलन

दोहा– मिली भुवन सूनै मही, उपमां रही सुहाय ।
मांनौ दीपति देहकी, मिली देहसौं आय ॥ ११६

यथा– आजु परोसनि मंदिर सूनै, मिली ब्रजचंदसौं राधे छलीसी ।
सोहै प्रमा(भा) दिनसी अंगसौ, उझलैं प्रति-अंगनि भांति भलीसी ॥
ता छिनकी उपमां अति सो मन, मेरेमैं आयकैं असैं चलीसी ।
छूटि लसैं घनके घन बीच, मनौं चकि चंचला चंद मिलीसी ॥ ११७

अथ भयकौमिलन

दोहा– मिली जाय भयकै समैं, यौं ब्रजचंद सुहाय ।
मनहुं[10] चंदहूंसौं लगी, चपलासी चपलाय ॥ ११८

---

११२. १ ख. लसें । २ ख. विपन पननमें । ३ ख. आइ ।
११३. ४ ख. आयें । ५ ख. वै धाय ।
११४. ६ ख. ज्यों । ७ ग. रही ।
११५. ८ ख. सों तिरे हैं । ग. यों तिरै हैं । ९ ख. दुहुं वोरनकी । ग. दुहू वोरनकी ।
११८. १० ख. मनों । ग. मनहूं ।

यथा– पारैं[1] परोसकैं आगि लगै, करैं लोगु बुझांवनकौं उघटैंसी ।
ता छल पाय मिली ब्रजचंदसौं, तू चितकी करिकैं सिमटैंसी[2] ॥
यौं मन मेरेमैं आवत[3] है, डर भूलि इतै न करै चपटैंसी ।
दौरि[4] सवै झपटैंगे इतै, सो लगी लपि पावककी लपटैंसी ॥ ११९

अथ ब्याधि-मिसकौ मिलन

दोहा– ब्याधि - भुवन अैसैं मिली, नंदनंदनसौं जूटि ।
मांनौ सफ़री झरफि जल, मिली जालसौं छूटि ॥ १२०

यथा– आजु[5] कछू अंग आरसतैं, सो जतायकैं राधे समाज मिली है ।
ता समैं आए इलाजनकौं, बहिंआं नदनंदन हाथ मिलो है ॥
छूटि रही अलकैं[6] उरपैं, ब्रजचंदके रंग मिलैं उझली है ।
मानहुं सीसतैं चंदलता, असिता षुलि धार हजार चली है ॥ १२१

अथ जनीके भुवनकौं मिलन

दोहा– जनी - भुवन अैसैं मिली, नंदनंदनसौं आय ।
छूटि मनौं कुमदनि[7] मिली, चांद - चंद्रिका छाय ॥ १२२

यथा– आजु[8] ग्वालबाल[9] मिलि भारी-भौंन[10] अंगनमैं ,
षेलके प्रसंगनमैं भीर न समाती है ।
हसि-हसि चहुंधां[11] कहत आंषि मूदि षेलैं ,
जूटी - जूटी घिरत फिरत ताती - ताती है ।
कांनलौं बडौं है नैंन राधिकाके मूदे हरि ,
षुलिकैं[12] निकारि ताकी सोभा बरसाती है ।
अफरीतैं जलतैं तरफरी सम्हारी मनौं ,
टूटैं जाल सफरी ज्यौं छूटि-छूटि जाती हैं ॥ १२३

अथ निसचारकौ मिलन

दोहा– लसत साथ निसचारमैं, नंदनंदनसौं आय ।
चंद घनांघन जालमैं[13], दुरचो मनौं दरसाय ॥ १२४

---

११९. १ ख. पार । २ ख सिमटीसी । ३ ख. आवती । ४ ख ग. दोरि ।
१२१. ५ ख. आज । ६ ख. अलकें ।
१२२. ७ ख. कुमुदनि ।
१२३. ८ ख. आज । ९ ख. ग्वालु बालु । १० ख. भारीभोंन-अंगन । ११ ख. चहुंधा ।
१२ ग. षुरिकैं ।
१२४. १३ ख. लजा ।

यथा– पूजनकौं व्रजदेबीकौं रैंनमें, ध्याए सबै न रह्यो घरमैं है ।
छूटी घटामैं लुटै रूप राधिके, भेट भई हरिसौं झरमैं[1] है ।।
यौं मिलगे दोऊ नेह-छके[2], उपमां मन मेरे नयीं भरमै है ।
ज्यौं[3] घन सत्थ सुधाधर मांनौ, छिपैं छबि देत ज्यौं अंबरमैं है ।। १२५

अथ न्यौंतेको मिलन

दोहा– नौंतेकै मन्दिर मिली, नंदनंदनसौं जूटि ।
जैसैं षुलि रबिसौं मिली, जनु सरोजनी षूटि ।। १२६

यथा– जैंवन पास परोसकैं राधे, गई जबै सौंहैं करोर छली है ।
देषि अकेले तहां नंदनंदन, लाज कछू उर माझ फली है ।।
चीर गह्यौ हसिकै स्यामरंगकौ*, यौ उपमां उरमें उझली है ।
कंजतें त्यौं षुली षूटि उतावली, ज्यौं अलि-आवली छूटि चली है ।। १२७

अथ उत्सवको मिलन

दोहा– उत्सवकैं मन्दिर मिली, नंदनंदनसौं आय ।
फारि घटा चंदहि मिली, बिज्जु छटासी जाय ।। १२८

यथा– रातिजगैं व्रजमैं व्रजदेवीकैं, आय सबै छितिकी धन जूंटी ।
राति घटैं[4] नीद आंषिन आयें, करी प्यारैं राधिके आंनंद लूंटी ।।
चुंवन दै उघरे[5] मुषपै बंदी[6], मोतिनकी उपमां यों बिछूटी ।
षूटी करोरन सथ्य[7] मनौं, तमपै छुटि चंदकी पंकति टूंटी ।। १२९

इति श्रीनेहतरंगे रावराजा श्रीबुद्धसिंह सुरचते मिलन-स्थांन निरूपणं
नाम पंचमो तरंग

*

अथ सषीजनबनंन

दोहा– धाय नटी नांयनि जनी, और परोसनि नारि ।
मांलनि बरथनि[8] सिलपनी, चुरेहेरी[9] निरधारि ।। १३०

---

१२५. १ ख. जरमें । २ ख. नेंनके । ३ ख. है ।
१२९. ४ ख. घटि । ५ ख. उघरी । ६ ख. बेंदी । ७ ख. सघ्य ।
१३०. ८ ख. ग. वरयनि । ९ ग. चुरहेरी । *'रंग स्यामको' ऐसा पाठ होना चाहिए ।

दोहा– रामजनी सन्यासनी, अवर[1] सुनारि सुनांम ।
पटयनि एती कहत हैं, सषी मिलनकी[2] बाम ॥ १३१

अथ धायकौ बचन श्रीराधिकासौं

दोहा– करत चलाकी चंचला, महाबलाकी सोर ।
चंदमुषी चलि राधिका, मिलिए नंदकिसोर ॥ १३२

यथा–मोतिन-माल[3]नषित्रन फैलिकैं, चंद्रिका-हासि[4]ज्यौं छबि छाये ।
लाज सरोजनि मुद्रित कैं[5] चित, मोदक मोदनिकौ[6] सरसाये ॥
प्राची-दिसा चढ़ि चायनपैं[7], अति आनंदसौ या दसा दरसाये[8] ।
य्यौं तेरे नैंन-चकोरनपैं, बृजचंद मनौं चलि चंदसे आये ॥ १३३

अथ धायकौ बचन श्रीकृष्णसौं

दोहा– लाई हौं हित रावरैं, तन - उपमांसौं जूटि ।
रहि चकोर चष छूटिकैं[9], चंदकलासी टूटि ॥ १३४

यथा– अंजन बंक कलंक[10] षुलैं, तार-हारन-मोतिनकी छबि छाई ।
हासी लसैं चंद्रिका ज्यौं कमोदसी, आलिन संग अमी बगराई ॥
छूटत कुंज-घनांघनसौं बन, लूटतसी तिहुंलोक निकाई ।
रावरै नैंन चकोरनपैं आजु, चंद ज्यौं चंदमुषी चलि आई ॥ १३५

अथ नटीवचन श्रीराधिकासौं

दोहा– चहुं-दिसितैं चपला चमकि, उठै घोर घन आय ।
जूटि - जूटि ता मिलनकौ, लुटी - लुटी दरसाय ॥ १३६

यथा– स्यांम लसैं घन-अंवरसे, अलकैं धुरवांनिहूंसी[11] अवधारे ।
चंचला टूटि पितंबरकी[12] दुति, बूंदन[13] मोतिन-हार सुधारे ॥
आजु या कुंजनकै[14] मिलबैं, अभिलाष ज्यौं मोरनके उर धारे ।
चंदमुषी तेरे लोचनपैं, बरिषारितु ज्यौं बृजचंद सिधारे ॥ १३७

---

१३१. १ ख. अबर । ग. अवरि । २ ख. मिलीनकी ।
१३३. ३ ख. मोतिनु-माल । ४ ख. ग. चंद्रिका-हांसिन । ५ ख. मुद्रिके । ६ ग. मौदनिकौ । ७ ख. चाप तपें । ८ ख. पद सारद गायें ।
१३४. ९ ख. चूटिके ।
१३५. १० ख. ग. कलंक ।
१३७. ११ ख. ग. हुसी । १२ ख. पीतांबरकी । ग. पीतंबरकी । १३ ख. ग. वूंदन । १४ ख. याके जनके ।

अथ नटीकौ बचन श्रीक्रस्न स

दोहा— आजु मिलैं मिलिये बनैं, सुनौं बात बृजचंद ।
चाहत है तुमकौं वहै, ज्यौं चकोर मुषचंद ।। १३८

यथा— अंबर नील-घटासी षुलैं, मोतीहारन बूंदन ज्यौं बरषाई ।
छूटि लसैं अलकैं धुरवासी त्यौं, हांसीनपैं तडिता छबि छाई ।।
घूघटकैं उघरैं उघरैं[1] मुषचंदकी[2] ज्यौं उघरैं परछाई ।
नैंन तिहारे ज्यौं चातकपैं, चलि बाल किधौं[3] वरषारितु आई ।। १३९

अथ नायनिकौ बचन श्रीराधिकासौं

यथा— परत पुंज अति बिरहके, तम - निकुंज घहराति ।
तू न चकीसी[4] चलति किन, महाबकीसी[5] राति ।। १४०

यथा— अंबर-पीत षुलैं कदली, अभिलाषन - पल्लव त्यौं सरसाये ।
छूटि झरैं अंगराग - पराग, सुगंधन सीतल मंद जताये[6] ।।
हार लसैं फुलवादि-बहारहिं, तू[7] जन कोकिल कीरति गाये ।
षंजनसे तेरे नैंननिपैं, बृजराज मनौं रतिराज ह्वै आये ।। १४१

अथ नायनिकौ बचन श्रीकृष्णसौं

दोहा— षरी चाहि उहि चटपटी, मिलन बारकौ हेरि ।
जैसी लागी चंदकी, ज्यौं चकोर अवसेरि ।। १४२

यथा— भौंरन-झौंरन साथ लये, लयें कोकिल साथ लसैं चतुराईं ।
फूल अनेक ज्यौं अंबर साजि[8], सुगंध-सुगंधनकी सरसाईं ।।
काल्हिके केते निहोरनिसौं,करि द्यौर-जिठानीकी संक न लाईं ।
नैंन-सरोज तिहारेंनपैं, रतिराज[9] ज्यौं चंदमुषी चलि आईं ।। १४३

अथ जनीकौ बचन श्रीराधिकासौं

दोहा— अंग - सिंगार फुलवादि ज्यौं, तेरे मिलन इलाज ।
आये हैं बृजराज यत[10], साजि मनौ रतिराज ।। १४४

---

१३९. १ ख. उघरें-उघरें । २. ग. मुष ओपम । ३ ख. किशोर ।
१४०. ४ ख. ग. नचका । ५ क. महाबकासी ।
१४१. ६ ख. जुताये । ७ ग. तु ।
१४३. ८ ख. अंबर साझि । ९ ग. रातिराजि ।
१४४. १० ग. इत ।

यथा– भूषन-जोति मनौं षुलिकैं, किरनैं कढ़िकै[1] अंगसौं सरसे हैं ।
अंबर - पीत अताप बिषेरिकै[2], चंद्रलता अहितूकरसे हैं ।।
आवत या बनि बांनिकसौं, मग-कुंज इही छविसौं परसे हैं ।
राधे तो नैंन-सरोजनिपैं, बृजचंद ज्यौं सूरजसे दरसे हैं ।। १४५

अथ जनीको बचन श्रीकृष्णसौं

दोहा– लाल तिहारे मिलनकी, वह बलि करत उमाह ।
ज्यौं घनकी नितिप्रति रहै[3], चातकके उर चाह ।। १४६

यथा– अंगनसौं फुलवादिसी षूटिकैं, ताप दै सौतिनपैं अतिसी है ।
धूम दै ऊंनत-कुंजनपैं षुलि, हासिन चंद्रिका कीजतिसी है ।।
कांपत गात ससंक जिठांनीसौं, सासके त्रासन त्यौं गतिसी है ।
चाहिकैं[4] तो हितसौं ब्रजचंद वा, आवत आजु छहौं रितसी है ।। १४७

अथ परोसनिको बचन श्रीराधिकासौं

दोहा– आजु तिहारे मिलनकौं, नंदनंदन उमहात ।
लसै बढचौ[5] उपमांनसौं, चंद चढचौ यत[6] आत ।। १४८

यथा– जे सिव साधि समाधिन-साधन, बेद-पुराण[7] कहैं अनुरागी ।
ध्यावैं जिनैं नर देव अदेव, बिरंचिहुंकै[8] मुष कीरति जागी ।।
धारे जिन्हैं[9] तिहुं लोक उधारि, मिलापकी आतुरता अति लागी ।
चंदमुषी सुनि री बृजचंदकैं, तू वडे भागनि आंषिन लागी ।। १४९

अथ परोसनिको वचन श्रीकृष्णसौं

दोहा– लाल तिहारे मिलनकौं, वह बलि चित वरजोर ।
ज्यौं अभिलाषन लाषतैं[10], 'रहे मोर घन ओर[11]' ।।

यथा– अंजन षूटि लसैं बिषसो, सोही[12] हांसी सुधारससैं अतिसी है ।
बंक-चितौनी सुरा, मुषचंद अमंद लिये चांद्रिका जतिसी है ।।

---

१४५. १ ख. कटिकैं । २ ग. बिषेरिक ।
१४६. ३ ख. हरै ।
१४७. ४ ग. वाहिकैं ।
१४८. ५ ख. चढचौ । ६ ख. ग. बढचौ इत ।
१४९. ७ ख. वेद-पूराण । ८ ख. विरह । ग. विरचिहूंकै । ९ ग. जिनै ।
१५०. १० ग. लाषतै । ११ ख. रहै मोर घन और ।
१५१. १२ ग. साहा ।

मोतिन-हार हिये षुलिकैं, पग-जावकसो गति पावकसी है ।
दीपति दीप मिलौं बृजचंद वा, आवति आजु नदीपतिसी है ।। १५१

अथ मालनिकौं बचन श्रीराधिकासौं

दोहा— कछु उघरचो-उघरचो चहत, अबैं[1] चांद चढ़ि आत ।
क्यौं कपाट[2] उघरत जरत, परत राति इतरात ।। १५२

यथा— अंगनकी प्रति-अंगनकी[3] षुलि, चांद्रिका जाल हियें अवरेषैं ।
फलेसे त्यौं मृदु - हांसनमैं[4] नहि, सुद्ध सुधा बसुधा न बिसेषैं ।।
हार - नक्षित्रनकी उछटै कित, तारनकी उपमा अनलेषैं ।
तो मुषचंदकौ[5] देषतही, समता बृजचंद न चांदकौं देषैं ।। १५३

अथ मालनिकौ बचन श्रीकृष्णसौं

दोहा— वहि[6] आलीकौ मिलनकी, चाह रहत चित पास ।
रैंनि - दिनां जैसे लगी, रहै फूलमैं बास ।। १५४

यथा— आजु हौं ल्याईहौं गोपसुता बलि, रंभाहुंसौं[7] रतिसौं अगलीसी ।
चौकि चकौरनहूं चहुंऔरतै, भौरन हंसनहूं मगलीसी ।।
चूनरी स्यांम समाजनतै परैं, चांद्रिका अंगनतें उगलीसी ।
चाही चिराकन[8] चंपकहूं, स मिली मानौं चंद्रमाकी चुगलीसी ।। १५५

अथ बरयनिकौ बचन श्रीराधिकासौ

दोहा— ज्यौं किरनपति[9] किरनिकी, आस धरत अरबिंद ।
चंदमुषी तो मिलनकी, चाह करत बृजचंद ।। १५६

यथा— कौन दई यह बाय बलायलौं, नैंक परैं नहि नेह नवेरू ।
लाज सके बिझुकेसे[10] थकेसे, जकेसे रहैं तिहि रूपके तेरू ।।

---

१५२. १ ख. अबे । २ ख. कपटि ।

१५३. ३ ख. अति अंगनकी । ४ ख. मृदुहासनि । ग. मृदुहासन । ५ ख. मुषचंदके ।

१५४. ६ ख. ग. वह ।

१५५. ७ ख. रंभाहुंते । ८ क. निराकन ।

१५६. ९ ख. किरननपति । १० ख. बिछकेसे ।

तो मुषचंदके देषनकौं लगि, चाय रही उपमां उरझेरू ।
पेमके[1] फंदनमैं पहुचे[2] वे, परे पिजरांनके जानि पषेरू[3] ॥ १५७

अथ वरयनिकौ बचन श्रीकृष्णसौं

दोहा– वह बलि कीयौं मिलनकौं,चितबृति[4]चष झुकि झौर ।
मिलि सरोज प्रतिरोजकौ, ज्यौं भूलत नहि भौर ॥ १५८

यथा-- आजु मैं ल्याई हौं गोपुसुता छबि, सोहत तैसी प्रभानकी सैली ।
चांदिनी ज्यौं अंगअंगन छूटिकैं, जूटि समेटिकैं सारी उजेली ॥
सोहत है अति यौं दरमैं[5], उपमां मन मेरेमैं औसें उझेली ।
आवत वा मग-कुंजनकैं, चहुंओरतैं मानौं चिराकसी[6] फैलो ॥ १५९

अथ सिलपनीकौं बचन श्रीराधिकासौं

दोहा– उनहिं मिलनकी झटपटी, निपट नटपटी नीति ।
लगी द्दगनि अति चटपटी, षरी अटपटी रीति ॥ १६०

यथा-- ता पर देव-अदेव-कुमारि, उतारिकैं लाजके साज धरैंगी ।
ता मुषकी मधुरी - मुसकांनिसौं[7] चंद बहारकौं मंद करैंगी ॥
ता हरिकौ तू निहारिबौ चाहत, क्यौं गति तो मति यौं निसरैंगी ।
जागीसी ज्यौं रति-रंगनसौ,आषैं[8]लागी तौ लागी तौ लागी रहैगी ॥१६१

अथ सिलपनीकौं बचन श्रीकृष्णसौं

दोहा– बकी - बकीसी रहत निसि, थकी - थकीसी गेह ।
लषी - लषी ता दिन वहै, बिकी - बिकीसी देह ॥ १६२

यथा– टीका जराऊ[9]सुधारससैं[10], मुष भारैं तमोरनि वोप सुधारैं ।
धारैं हरैं षुलि अंबरकैं, षोरि केसरिकी दयें सुद्ध कतारैं ॥
भूषन हीरनके छहरैं, छूटे बार त्यौं मोतिनसौं उरझारैं ।
आवत आजु तिहारैं लिये, मग राधिके अंग नऊं गृह[11] धारैं ॥ १६३

---

१५७. १ के. पेमेके । २ ग. पहुंचे । ३ ग. जांनि पषेरूं ।
१५८. ४ ख. चितव्रत । ग. चितवृति ।
१५९. ५ ख. ग. दरसें । ६ ग. राकसी ।
१६१. ७ ग. मधुरी मुसकानि । ८ ग. आंषेपे ।
१६३. ९ ख. जराय । १० ख. सुधारससों । ११ ख. नवग्रह । ग. नउग्रह ।

अथ चुरेहेरनिकौ बचन श्रीराधिकासौं

दोहा— मोतिन - माल नक्षित्र[1] मिलि, अंग - अंग छविछंद ।
याते तेरे मिलनकौं, चंदमुषी बृजचंद ।। १६४

यथा— सासके लंगर टूटतसी, बृजनारि त्यौं छूटि मिल्यौ अभिलाषैं ।
देवकुमारी अदेवन-नारिसो, गौंरिकौं पूजि बिचारमैं राषैं ।।
ता बृजचंदकौ तू अब मोहि, बुलायकें देत मिलापकी साषैं ।
प्रीति इलाजसौं लाजसौं धोई री, हाथसौं षोई री बैरनि आषैं ।। १६५

अथ चुरेहेरनिकौं बचन श्रीकृष्णसौ

दोहा— मिलन रावरें काज हरि, बाढत[2] नेह अछेह ।
दीप तिहारैं दरस उन, की[3] पतंगसी देह ।। १६६

यथा— रावरी वातें सुभायकें[4]भायसौं, चाहिकै भाय[5]कहूं जी चढैंगी ।
ता पर आवन यौं तमको, मग फैलिकैं चांदनी कुंज मढैंगी ।।
मोहि महा[6] डर है धौं बडौ, पढैं मंत्रन जंत्र अनेक वढैंगी ।
राधिकाकी वे वडी-वडी-आंवैं, गडी तो गडी न वे काढी कढैंगी ।। १६७

अथ रांमजनीकौ वचन श्रीराधिकासौं

दोहा— मुष - मयंक - परकासकी, मिलि है जौति मयंक ।
रंगरलो करिकैं अली, चलि अब कुंज निसंक ।। १६८

यथा— आजु बुलावनकौं बृजचंदकौं, बोली मैं जाय घरी-सुघरी हैं ।
फूल्यौ हियौ बहियां फरकी, हरषी अषियां अति रीझि भरी[7]हैं ।।
सोहत अैसे समाजनसौं, उपमां मन आयकें यौं निषरी हैं ।
मांनौ चकोरनकें अभिलाषपैं, चंदकी छूटि कला विखरी हैं ।। १६९

अथ रांमजनीकौ बचन श्रीकृष्णसौं

दोहा— अफरी-अफरी भुवनमैं, मिलन तिहारें चीति[8] ।
परी तरफरीसी लसै, जल - सफरीकी[9] रीति ।। १७०

---

१६४. १ ख. नक्षत्र ।
१६६. २ ख. बाटत । ग. वाढत । ३ ग. कीड ।
१६७. ४ ख. सुभाईकें । ५ ख. भाई । ६ ग. माहा ।
१६९. ७ ख. अति रागि भरी ।
१७०. ८ ख. मीति । ९ ख. सफरीक ।

यथा– ल्यावत आजु[1] तिहारे मिलापकौं, गांवही तै[2] ओर राह गही[3] है ।
कैसै[4] करों उघरी परें[5] अंबर, अंग[6] छिपायौ तऊ न छही है ।।
भौंरके भौंर समाज[7] चकोरन[8], तैंसै पतंगनि देह दही है ।
काहू चिराक कही चपला कही, चंद्रिका काहूनै चंद कही है ।। १७१

अथ सन्यासनीको बचन श्रीराधिकासौं

दोहा– अतनवृंद[9] दाहत तनह, चाहत मग घनस्यांम ।
मधुप - पुंज गुंजत षरैं, चलिन कुंज बलि बांम[10] ।। १७२

यथा– काहूसौं[11] बात करै मन षोलै, न डोलै न कुंजन चाहि बगी[12] है ।
मैलेसे[13] गात सुहात महा, उपमां अनाघात ज्यौं चंद पगी है ।।
भूलीसी भूष बिसारेसे पांन, नही सुधि न्हांन समाधि जगी है ।
जानी परै नहि हौनौं[14] कहा, उनकै मुष एक तुहो तू लगी है ।। १७३

अथ सन्यासनीको बचन श्रीकृष्णसौं

दोहा– पीरीसी नीरी[15] दरस, वह बलि सहज - सुभाय ।
रैंनि-दिना[16] लागी रहै, द्दगनि[17] रांवरी चाय[18] ।। १७४

यथा–या डरसौं तुमसौं छलसौं करि, बातैं अनेक बनाय अथागैं ।
भादौंहूंकी या कुहूंकी निसामधि, ल्याई हुंती तमसौं छबि लागैं ।
अंगन-अंगनकी षुलि जात वै, जोतिके जाल अगाऊलैं बागैं ।
लागत लूटि प्रभानकी[19] सैलीसी, फैलीसी[20] आवति चांदिनी आगैं ।। १७५

अथ सुनारिको बचन श्रीराधिकासौं

दोहा– लोक-लाज निदरी सबै, प्रगट तरफरी प्रीति ।
भलैं लई यन[21] नैंनतैं, जल - सफरीकी रीति ।। १७६

---

१७१. १ ख. ग. आज । २ ख. तें । ३ ख. गई । ४ ख. केसें । ५ ख. परें ।
६ ख. आंग । ७ ख. समाझ । ८ ख. ग वारेंनते ।

१७२. ९ ख. अनतवृंद । ग. अततवृंद । १० ख. ग वांम ।

१७३. ११ ख. काहूसों । १२ ख. वगी । १३ ख. मेरेंसो । १४ ख. होनों ।

१७४. १५ ख. नारि । १६ ख. रेनि-विना । १७ ख. द्रगन १८ ख चांह ।

१७५. १९ ख. अभानकी । २० ख. फेलीसी ।

१७६. २१ ख. ग. भई यन ।

यथा–आजु गई ही जसोमतिकैं, सो मिले नंदनंदन प्रीति उघारैं ।
मोसौं करी बडी बेरहु लौं[1], मनुहारि महा अभिलाष उजारैं ।।
आजु तिहारे मिलापहूकौं, दोऊ नैन रहे उपमां उनहारैं ।
चाय-चपे-चित-चातक[2]चौंकि, त्रिषानकी त्राससौं चांच[3]पसारै ।। १७७

अथ सुनारिको बचन श्रीकृष्णसौं

दोहा– लाल तिहारैं दरस उन, लगी दृगनि जक जाफ ।
न्यारी भई न नांच है, चाहत भयौ जुराफ ।। १७८

यथा–आई तिहारे मिलापनकौं, रति-रंभासी गंगाहूसी गहरैंसी[4] ।
केसरि-षौरि षुली अलकैं[5], बसैं[6] अंग-सिंगारनकी बहरैंसो[7] ।।
ता पर यौं चहु-चांदिनीकी मिलि, केसनि बीचि लसै कहरैसी ।
मांनहुं सीस छिपाकरकैं छुटि, जाल-नक्षत्रनकी[8] छहरैंसी ।।१७९

अथ पटयनिकौं[9] बचन श्रीराधिकासौं

दोहा– हौं[10] पठई तुव[11] लैंनकौं, अब कित चहत बसीठ ।
जगी - जगी अनुरागसौं, लगी - लगी वे दीठि ।। १८०

यथा–कोऊ[12]कहौ भल[13]कोऊ सुनौं, कछू होत कहा कहि बात न[14]नांषैं ।
द्यौरजिठांनी रिसांनी जौ सासु, बसानी कहा चितकैं अभिलाषैं ।।
देषैं[15]बिनां जिन्हैं[16]कैसें सरै, जिनकी सषि बेद-पुरांननि साषैं[17] ।
आपनी[18]एन सगी जिनकी, सुलगीं जेरी लाषनि बीचि वै आंषैं ।।१८१

अथ पटयनिकौ बचन श्रीकृष्णसौं

दोहा– मिलन - लगन लागी लगै, मनमैं रही उमाहि ।
लवैं सचांनक लौं लगी, चषनि अचांनक चाहि[19] ।। १८२

---

१७७. १ ख. बेरहीलों । ग. बेरहू । २ ख. चाप-चपे-चित-चातक । ३ ख. चोंच ।
१७८. ४ ख. ग. गेहरैंसी । ५ ख. अलकें । ६ ख. वसें । ७ ख. वहरैंसी ।
८ ख. लाज-नक्षत्रनकी ।
१८०. ९ ख. पटवनिको । १० ख. हों । ११ ख. तुब ।
१८१. १२ ख. ग. कोउ । १३ ख. भलो । १४ ख. वातनि । १५ ख. देख ।
ग. दैपैं । १६ ख. जिह । १७ ख. वेद पुरांनमैं साखें । १८ ख अपनी ।
१८२. १९ ख. चाहि ।

यथा– बंक-मयंक नषच्छदसौ षुलि, तारन-हारनकी छबि छांई[1] ।
भारे[2] सुगंध समीर लयें[3], संग नायककें सरसें[4] सरसांई ॥
कीजे कहा चित[5]टोकी कहूं, मिलि ल्याईय तै[6]करिकें चतुराई ।
मेरे ए[7] नैंन सरोजनपें[8], कितसौं बनि ग्राई है सौति जुन्हाई ॥ १८३

अथ सषी-कर्मकथनं

दोहा– सछ्या[9] बिनय मनावनौं, करै सिंगार मिलाइ ।
झुकै रु देत उराहनौं[10], ए सषीनके भाइ ॥ १८३

अथ सछ्यालक्षन

दोहा– सीष देत कछु समुझिकै[11] दंपति हिय सुष पाय[12] ।
ताकौं सछ्या[13] कहत हैं, कविकोबिद समुझाय[14] ॥ १८५

अथ श्रीराधिका कहुं सछ्या

यथा–बानिक तें[15]बनिकें सजनी, चलिए वनसौं मिलिए बलि जांहीं[16] ।
चाहत या सुषकौं सगरी सुख, मै दुषकौ गहिबौ है बृथा ही[17] ॥
जा हरिकौं नर देव-कुमारि, करें तप कोटि लहैं नहि छांहीं ।
नांहीसौं नांही करौ बलि नांही री, नाहसौं नाही निबांहन नांही ॥ १८६

अथ श्रीकृष्णकौं सछ्या

यथा– मिलै बिन देषै[18]बलि प्रीतिरीति ग्रैसी बिधि ,
चंद्रिका चमेली[19]चारु चौकनि[20]निसार है ।
उन दिन बिन उन घरि बिन पल बिन ,
सौरभ सरागी बिन चंपक[21] बहार है ।
मिलन बसंत दई ग्रास[22] जौ न करतौ तौ ,
निबहत कैसें नेह लागे इकतार है ।

---

१८३. १ ख छाई । ग. चांहि । २ ख. ग. भार । ३ ख. लयें । ४ ख. सरसे ।
५ ख. चितये । ६ ख. ल्याई इतें । ७ ख. मेरे ये । ग. मेर ए ।
८ ख. सरोजनियें ।

१८४. ९ ख. सिष्या । १० ख. उराहनो ।

१८५. ११ ख. समुझिकें । १२ ख. सुखपाई । १३ ख. सख्या । १४ ख. समुझाई ।

१८६. १५ ख. वानिकसों । १६ ख. चलियें बलि रावरी सो मिल जांई । १७ ख. व्रथाई ।

१८७. १८ ख. देखो । १९ ख. चमैंली । २० ख. चोकनि । २१ ख. पंकज ।
२२ ख. ग्रासा ।

गहरी[1] गुलाब छूटि भौंर जरि स्याह भयौ ,
भौंर छूटि सूलनि गुलाब वारपार है ॥ १८७

अथ बिनयलक्षिन

दोहा— करै बीनती दुहुंनकी[2], सषी जोरिकैं पांनि ।
ग्रंथनिमैं कबि कहत हैं, तासौं बिनय बषांनि ॥ १८८

अथ श्रीराधिका कहु[3] बिनय

यथा— देषनकौं मन त्यौं तरसैं, तरसै श्रुति बोलनकौ जु महा री ।
त्यौं मिलबै बहियां तरसैं, परसैं जु नही[4] अभिलाषन भारी ॥
कौंन मिलावै कहा करिए, मनहूंकी दसा इन बातन हारी ।
चंदमुषो मुष देषिबेकौं, सु लई इन आंषिन पीर उधारी ॥ १८९

अथ श्रीकृष्ण कहुंबिनय

यथा— वा गुनकी अगरी-अगरी, सगरी लयें रीति सुग्रंथनि गांही ।
जो पैं[5] कहा भयौ बात कहा, कहिबै सुनिबे मैं कछू कहि आंही ॥
असें नहीं[6] बलि यौं करिबौं, मिलिये चलि आंनदकें मनमांही ।
क्यौं करौ नेहकी बातनमै, सु तिहारै सुनी मुष या नई नांही ॥ १९०

अथ मनावनलक्षन

दोहा— ढाहि देत हठ दुहुनकौ, रस करि दैहि मिलाइ ।
तासौ कहत मनाइबौ, कबितामैं कबिराइ[7] ॥ १९१

अथ श्रीराधिका कहुं मनायबौ

यथा— मोर ज्यौं[8] हेरत मेघनिकौं, हिय हंस ज्यौं सागरकौं मन टेरैं[9] ।
ज्यौं अलि हेरत कंजनिकौं, प्रति-हेरत ज्यौं अरिबिंद उजेरैं ॥
मांनिए मेरी अती[10] बिनती, मिलिये सषियां वे रही मन फेरैं ।
चौंकि-चकेसे[11] रहे चहुंघां, सु चकोरनि[12] ज्यौं बिन चँदकौं हेरैं ॥ १९२

---

१८७. १ ख. गहरे ।
१८८. २ ख दउंन । ग. दुहूनकी ।
१८९. ३ ख. को । ग. कौ । ४ ख. जुत ही ।
१९०. ५ ख. यें । ग. जो पै । ६ ग. अैसो नहि ।
१९१. ७ ख. कबिरायी ।
१९२. ८ ख. ज्यों । ९ ख. टेरे । १० ख. इती । ग. अति । ११ ख. चोंके-चकेसे । १२ ख. चकोरन ।

अथ श्रीकृष्ण कहुं मनाइबौ

दोहा– आपनैंसें परमान चलौ, हरि या बृजमैं[1] निबहै रस कैसें ।
मांन करैं वह तौ इह[2] बूझिए[3], आप करौं उलटी गति तैसें ।।
एतौ[4] भलौ अधिकौ न मनाव है[5], मेरी सौं बात बनावन[6] ऐसें ।
काहू कौं बीच दै बीच न पारौ, मिलौ बलि ज्यौं मिलि आए हौ जैसें ।। १९३

अथ सिंगारलक्षन

दोहा– सजैं सिंगार दुहूंनके[7], सोरह बिबधि बनाइ ।
ताहि सिंगार बषांनिकैं, कहत सबै कबिराइ ।। १९४

अथ श्रीराधिका कहुं सिंगार

यथा– अंजन मंजन कैं दृग - रंजन, षंजन चंचलताई चुराई ।
मांग बनी सजनी सिरि ज्यौं गिरि, बिंधपै गंगकी धार धसाई ।।
टीका जरायकौं साथ लसै मिलि, भालपैं बंदनकी चतुराई ।
बैंनी बनाय गुही[8] बलि आजु मैं, मांनौं भुजंगनि पांष[9] लगाई ।। १९५

अथ श्रीकृष्ण कहुं सिंगार

यथा– स्यांम-सरीर[10] लसै पट पीत, मनौं घन-दामनि रूप भयौ है ।
बीरा[11] बन्यौं मुख सांथ मनौहर, यौं उमह्यौ[12] अनुराग नयौ है ।।
मोरकी चंद्रिका मोहै महा मन, अंग-प्रकासनतैं उगयौ है ।
चंदसे आंननपैं दिये षौरि, सुचंदनकी चित चोरि[13] लयौ है ।। १९६

अथ मिलैबौलक्षन

दोहा– काहू बिधि चित[14] दुहुंनकौ, मिलै मिलावै आंनि ।
ताहि कहत मिलाइबौ, कबिजन सबै बषांनि ।। १९७

अथ श्रीराधिकाकौ मिलाइबौ

यथा–मेरो कह्यौ सुन्यौ सो हितकौ, मिलि लालसौं मांनि कह्यौ सगलौ है ।
रीझत हैं सजनी सगरी, जिनसौं तुमसौं दिनमांन तलौ[15] है ।। १९८

---

१९३. १ ख. ग. व्रजमें। २ ख. ईह। ३ ख. बूझियें। ४ ख. ऐतो। ५ ख. मनाइवो। ६ ख. बनावत।
१९४. ७ ख. दोंहूनके। ग. दुहुनके।
१९५. ८ ख. गुहा। ९ ख. खांख।
१९६. १० ख. स्याम शरीर। ११ ख. वीरा। १२ ख. उमयो। १३ ग. चोर।
१९७. १४ ख. चित्त।
१९८. १५ ख. दिन मीत मिलो है।

गौतिनकौ सुष ह्वौ तिनमैं, सु तौ सौतिनकैं भयौ चाला चलौ है ।
आजु भली पल आजु भली छिन, आजु घरी दिन आजु भलौ है ।। १६८

अथ श्रीकृष्णकौ मिलाइबौ

यथा—मोद भयौ सजनीगनमैं चहुं, कौद भरचौ रस-सायर तैसें ।
लागे चकोरनलौं चष दौरि, फिरे न फिरैं इक सेवनि वैसें ।।
राधिकसौं अति आधिक पांय, मिले हरि-संग सषागन औसें ।
ऊग्यौ नछित्रनिसौं[1] मिलि[2] मानौं, कमोदनिके कुलपैं ससि जैसें ।। १६६

अथ झुकनलक्षन

दोहा— जो[3] सुषदायक निज हितू, कोउक औगुन देषि ।
षिजै दुहुंनकौ सहजमैं, झुकिबौ ता कहुं पेषि[4] ।। २००

अथ श्रीराधिका कहुं झुकिबौ

यथा—रावरी रौस परी यह कौंन[5], कह्यौ[6] सुषमैं कह[7] रोस रढावैं[8] ।
मेरे बनाये बन्यौ रस आय, सु काहेकौं[9] और सी बात कढावैं ।।
स्यांनप होइ तौं[10] आवैं कछुक न तौ सुक लौं दिनमांन पढावैं ।
मांन बढावत ह्वौ उनसौं इत, मोसौं कहा बलि भौंह चढावै ।। २०१

अथ श्रीकृष्णकहुं झुकिबौ

यथा—मैं जु कह्यौ नंदनंदनसौं, मिलिबेके सुभावकी रीति भनीलौं ।
पाई कहांतें दिठाई इती, सो न गाई परैं गुनवंते गुनीलौं ।।
आछी कहैं उलटी समुझैं, मन ह्वांत कहा अभिमांन घनीलौं ।
त्यौं-त्यौं भई चित चौगुनीसी, दुगनी तिगुनी भई आठगुनीलौं ।। २०२

अथ उराहिनें[11] लक्षिन

दोहा— बिनां भांवती[12] बात लषि, दुलषै तिनकौं आय ।
तासौं कहत उरांहिनौ, सबै सुकबि मन लाय ।। २०३

---

१६६. १ ख. नक्षत्रनिसौं । २ ख. मिल्यो ।
२००. ३ ग. जो । ४ ख पेंखि ।
२०१. ५ ख. कोंन । ६ ख. ग. कहा । ७ ख. कहा । ८ ख. बढ़ावैं ।
९ ख. कायेकों । १० ख. मानहोय तो ।
२०३. ११ ख. उराहनः । ग. उराहनो । १२ ख. भावनी ।

अथ श्रीराधिका कहूं उरांहिनौं

यथा—तू बडें मानभरी अभिमांन, कितै कहिवै सुनिबै अवधारी ।
तौपें[1]न तेरें न आवै कछू, मन आछी न अैसी दसा जो निहारी ।।
यौं वढि बोलिबौसौ उनसौं, वै तौ[2]चाहि लगे तेरें रूप उजारी ।
हेरि हिये हरिके हितकौं सु, हहा बलि हौं इन बात निहारी ।। २०४

श्रीकृष्णकौं उराहिनौं

यथा—मांनसकौं पहिचांनत[3]नांहि, सबै रसरीतिकी रौस थकी है ।
जात जहां फिरि जात जहां[4], सकुचौ न तहां[5]गति या अधिकी है ।।
सांवरौ रूप सलौंनौसौ देषिकें, भौंरी वहै भ्रम पाइ छकी है ।
गाथ कहौ हरिजूकी अकाथ, हहा हरि रावरें हाथ बिकी है ।। २०५

अथ सषी-बाकि-लक्षन[6]

दोहा— पियका सषि तियसौं[7]कहत[8], तियकी पियसौं आय ।
रसहि बढावै सो[9] सषी - बाकि कहैं कबिराय ।। २०६

अथ श्रीकृष्णकी सषीकौ बचन श्रीराधिकासौ

यथा—आजु[10]किती वडीबारहू लौं, उन मोसौ कही किती बात तिहारी ।
तेरी कहावतिकौं कहिकें, पछितावत केरि महा बनवारी ।।
मेरे कहैं मिलिए चलिकें सो, सुधासौं सनी लियें रूप उजारी ।
चाहि रहे वे चकौरनि ज्यौं, बलि मांनिए हौं मुषचंदपें वारी ।।२०७

अथ श्रीराधिकाकी सषीकौ बचन श्रीकृष्णसौं

यथा—चंदसी[11]चंद्रिकासी तजिकें सु, रहे मन सौंषि जिकें इक सातें ।
या बलिकें अभिमांन महा मन, है सो तौ रावरे नेहकें नातें ।।
तापर आप ईतौ करिए सुनि, आई पै[12]क्यौं न सुनाई न जातें ।
तासौं मिले सो निहारी-निहारी हौं, तौं बलिहारी तिहारी ये बातें ।।२०८

---

२०४. १ ग. तोपें । २ ग. व तो ।
२०५. ३ ख. पहिचानित । ग. पहिचानत । ४ क. जाहां । ५ ख. जहा ।
२०६. ६ ख. सषीवाक्य लक्षन । ग. सषीवाकि । ७ ख. तियकों । ८ ख. कहति । ९ ख. ग. बढ़ावहि ।
२०७. १० ख. आज ।
२०८. ११ ख. चंद्रसी । १२ ख. आइयें ।

अथ चेष्टालक्षन

दोहा– पिअ प्यारि[1] लषि परसपर, अति अँडात जम्हात ।
चितवैं मुरि मुसकै हसै, सो चेष्टा कहांत ।। २०९

अथ श्रीराधिकाकी चेष्टा

यथा–आजु कछू बारबार जम्हाइ, कछू सरसाइकैं मोद मढ़ी है ।
त्यौं-त्यौं महा अंगरावै कछू, अरसाय[2] रही मनमैं न दढी है ।।
सांची कहौं बलि मेरी सौं मोसौं, सु तू सुनि कैसें सुभाव कढी है[3] ।
दो अलि-पंकतिसी बढिकैं, भृकुटी चढि भाल अकास चढी है ।। २१०

अथ श्रीकृष्णकी चेष्टा

यथा–आवत जात हौं जांनि न जात[4], कछू गति-गूढ़से पाठ पढी है ।
बार ही वार उठौ अगराइकैं, हासि महा मन[5] मोद मढी है ।।
चाहसौं कौंन उछाह भरे सु[6], कहा अभिलाषकी बात रढी है ।
चंदसे भालपें भौहैं बढी, अंषियां चढि आजु अकास चढी है ।। २११

अथ स्वयंदूतलक्षन[7]

दोहा– क्यौंहु न दंपतिकौं बनै, मिलबौ मनभय मांनि ।
बुधि-बल[8] हौंहि बसीट तहं, स्वयंदूत पहिचांनि ।। २१२

अथ श्रीराधिकाकौ स्वयंदूत

यथा–तैसी अंधेरीसी रैंनि[9] रही, चमकैं तहं चंचला चाइ[10] लगैंकौं ।
भारी त्यौं भौंन रु सूनै परोस त्यौं, सूनीसी एकषिलाइ संगैंकौं[11] ।।
कान[12] सुनौं इह बात नई सु तौ, मोहि महा डर लागै अगैंकौं ।
आजु अली मिलिकैं ननदीकै, गई सब रातिकै रातिजगैंकौं ।। २१३

अथ श्रीकृष्णकौ स्वयंदूत

यथा–तैसेंही कुंज रहैं अलि गुंजत, तैसें चंपक चाल गही है ।
कोयल मोर मराल चकोर[13] चितै चहुंओरनि चौंप चही है ।।

---

२०९ १ ग. प्यारी ।
२१०. २ ख. अरसाई । ३ ख. कटी ।
२११. ४ ख. जांनिकैं जात । ५ ख. महामनी । ६ ख. भरचो ।
२१२. ७ ख. स्वयंदूति । ८ ग. बुद्धि-बल ।
२१३. ९ ख. रेनि । १० ख. चाप । ११ ख. एक लीलाई संगैकों । १२ ग. कांन ।
२१४. १३ ख. चकोरन ।

देषिए नैंक निहारि उतै, रतिराज महा मन मोद मही है
सायर सोहैं सरोजनिसौं, तैसैं चन्द्रमा चांदिनी छूटि रही है ॥ २१४

इति श्रीनेहतरंगे रावराजा श्रीवुद्धसिंह सुरचते सषीजन कर्मचेष्टा
स्वयंदूत निरूपणंनाम षष्टमो तरंग

*

अथ मानलक्षन

दोहा– अति हिततैं अनुरागुतैं, अंग गरब छबि छाइ[1] ।
ताही सौं कबिबर सकल, कहत मांन अधिकाय ॥ २१५

अथ मांनभेद

दोहा-- लघु मध्यम गुरु मांनिए[2], प्रिय प्रति तिय अधिकाय[3] ।
प्रिय त्रिय प्रति प्रगटात है, कहि बरनत कविराय ॥ २१६

अथ लघुमांनलक्षन

दोहा– कामनि और बिलोकतें, नैंननि देषै आय ।
उपजत है लघु मांन तह, कहैं सकल कविराय ॥ २१७

अथ श्रीराधिकाकौ लघुमांन

यथा–आरसी मंदिरमैं रिस राधिकैं, वैठि चढ़ी भृकुटी[4] लटैं षूंटी ।
ता छबि नैंक निहारतही[5], आजु कौंन वे नारि न होति ज्यौं लूटीं ॥
ता समैंकौं सषियां चहुंधा घिरि, मांन मनांवन उप्पम[6] जूटीं ।
चंदकैं ज्यौं आसपासनि छायकैं, पंति[7] नछित्रनकी छवि छूटी ॥ २१८

अथ श्रीकृष्णकौ लघुमानलक्षन[8]

दोहा– कह्यौ करै नहि पीयकौ, तिया कौंन हू भाय ।
उपजत है लघु मांन तहं[9], प्रीतमकैं उर आय ॥ २१९

यथा–मोहन आजु कछू बलि राधेसौं, मानकी रीति हियें उघटी हैं ।
ता समैं आय सबैं सषियां, सो मनावनकौं अति बातैं थटी हैं ॥
अैसैं अनेक समाजनसौं, उपमा मेरी आंषिनमैं उछटी[10] हैं ।
जैसैं कमोदनिके कुल्पैं, ससि छूटि मनौं किरनैं प्रगटी हैं ॥ २२०

---

२१५. १ ख. ग. छाय ।
२१६. २ ख. मानये । ३ ख. अधकाय ।
२१८. ४ ख. भ्रकुटी । ५ ख. निहार तहाँ । ६ उपय्यम । ग. उप्पमा ।
७ ख. पंकति । ग. पति ।
२१९. ८ ख. लछिन । ९ ख. ग. तहै । १० ख. उछूटी ।

अथ मध्यम-मानलक्षन

दोहा— करत बात पिय औरते[1], अवलोकैं तिय आंनि ।
तमकि भौंह सतराय तहं, मध्यम-मांन बषांनि ॥ २२१

अथ श्रीराधिकाकौ मध्यम-मांन

यथा—राधिके[2] रोसमैं आजु लषी, गरैं मोतिनकी मिलि माल बिछूटीं ।
बातें बकैं सक सैंन थकै, असैं नांषैं कितेकसी घातैं अफूटीं[3] ॥
गोरी मनांवनकौं सब दौरीसी, जे उपमां मंन मेरेमैं जूटीं ।
लै[4] छवि यौं अध-अंबरतैं, चपला मनु चंद मनांवन टूटीं ॥ २२२

अथ श्रीकृष्णकौ मध्यम-मांनलक्षन

दोहा— किहू भांति मांनत नहीं, तिया मनावत पीय ।
उपजत मध्यम - मांन तहं, आंनि पीयकैं जीय ॥ २२३

यथा—आजु कछू बलि राधिकासौं[5], हरि सोहत रूठिकै बैठे[6] अपूठें ।
आय घिरी चहुंऔरनतैं, यौं मनावन लागी सषीन अहूठें ॥
ता छबिकौं लषिकैं इहि भायसौं[7], दौरी यों[8] उप्पमता न अनूठें ।
चंदमुषी चहुं औरनतैं, मनु चंदकौ[9] चंद मनावत[10] रूठें ॥ २२४

अथ श्रीराधिकाकौ गुरु-मानलक्षन

दोहा— देषि चिन्ह कछु सौतिकौ, सुनि वाकौ हित साज ।
उपजि परत[11] गुरमांन तहं, कहत सबै कबिराज ॥ २२५

यथा—मंद भयौ पियकौ मुष चंदसौ[12], चंद्रिका हौंन चली सरनैं है ।
सौंतिनके[12] षुले नैंन-सरोज, हितू चित जैसैं मुद्रा बरनैं हैं ॥
मोतिनहार नषित्रन - जोति, यौं मानसमैं उपमां झरनैं हैं ।
जेठ समैं मांनौं तापसौं तूटिकैं, छूटि परी रबिकी किरनैं हैं ॥ २२६

---

२२१. १ ख. ओरतें ।

२२२. २ ख. श्रीराधिका । ३ ख ग. अहूटी । ४ ग. ले ।

२२४. ५ ख. राधिकाकों । ६ ख. बैठि । ७ ख. इहिभाईसों । ८ ख. होरी ।
९ ख. मनोचंदको । १० ख. मनावन ।

२२५. ११ ख. जरत ।

२२६. १२ ख. मुख चन्द्रसो । १३ ग. सोतिनके ।

अथ श्रीकृष्णकौ गुरुमांनलक्षन

दोहा– तजि मरिजादा जगतकी, बचन कहति तिय[1] आंन ।
प्रीतमकै[2] उर आय तहं, उपजत है गुरुमांन ।। २२७

यथा–राधेसौं[3]आजु कछु नंदनंदन, भारी हियें मन मांन भरयौ है ।
सारी सषीन मनांवनकौं, मिलिबेकौं तऊ मनहूं न करयौ है ।।
ता छबिकौं लषिकें छकिकें, मन मेरौ यौं उपम्मताई तरयौ है
सांझ[4] समैं अरबिंदनपें ससि, सोलै कलानि लयें उघरयौ है ।। २२८

दोहा– तजें मांन प्रीतम प्रिया, बाढै[5] उर अनुराग ।
ते षट-बिधि बरनौं अबै, सुनौ श्रवन-रस-लाग ।। २२९

दोहा– सांम दांन भेद रु प्रनत[6], और उपेछा होइ ।
पुनि प्रसंग बिध्वंस अरु, डंडन बरनें[7] कोइ ।। २३०

अथ स्यामलक्षन

दोहा– क्यौंहूं रसमय होत हैं, दंपति मांन निवारि ।
तांसौं सांम उपाय सब, कबिजन कहत बिचारि ।। २३१

अथ श्रीराधिकाकौं सांम-उपाय

यथा–हौं पठई कबकी मत लैंन, सौ तेरें कहा कितहू मन भायौ ।
कौंनसी बातन कैसी करै, नहिं जांनत कैसें कहा समझायौ ।।
और सीमेटि सबै चितकी[8], मिलबौ करिए अति ही अकुलायौ ।
तू सुनि री बलि चंदमुषीसों, चलै क्यौं न चंद सिरांहनें आयौ ।। २३२

अथ श्रीकृष्णकौ साम-उपाय

यथा–जा दिन तेंभये रावरें मांन[9], सम्हारै न बातनकी गहराई ।
वा दिनकी उन बातनपें बलि, कीजिये क्यौं यतनो[10]सतराई ।।
वाकै[11]भये मुष रूषें कछू, ज्यौं सबै सषियानकी उप्पम छाई ।
रातिकै आंवन[12]पांतिकी पांति, मनौं जलजातकी जात लजाई ।। २३३

---

२२७. १ ख. त्रिय । २ ख. पीतमके ।
२२८. ३ राधेसे । ४ ग. साज ।
२२९. ५ ख. वाटैं ।
२३०. ६ ख. ग. प्रतन । ७ ग. वरनें ।
२३२. ८ ख. चितको ।
२३३. ९ ख. ग. मीन । १० ख. इतनी । ११ ग. वाके । १२ ग. आंवन ।

अथ दांनलक्षन

दोहा– कँहू छल करि ब्याज मिस, मांन दँहि बहराइ ।
मोहत मन मधुरे बचन, सोहैं दांन - उपाइ ।। २३४

अथ श्रीराधिकाकौं दांन-उपाय

यथा–केती मजूरी सुधारि कमांन, भरचौ भलका जिहिं बीच सराहैं ।
हेरि समुद्रसौं[1] लाल मगायकैं, लाषनि साथ लई लषि लाहैं ।।
ल्याई तिहारे सिंगारकैं काजु, छकी मति रीझि लषैं छबि ताहैं ।
मोंलके[2] मैं घेसौ मोती मनौं, नथ मोतिय-चंद मिल्यौ मुष चाहैं[3] ।। २३५

अथ श्रीकृष्णकौं दांन-उपाय

यथा–रातिके जागतही बृजचंद, निहारत आरसी ज्यौं सरसी है ।
पीछैंसौं आय मनांवनकौं, मुषसौं प्रतिबिंब दै कैं परसी है ।।
आपनें कंठकौ हार हियें पर, डारत उप्पमता दरसी है ।
फेरि फिरैं मुषचंदकी ओर[4], मनौं करि कांम-कमान कसी है ।। २३६

अथ उपाय-भेदलक्षन

दोहा– जाहां[5] आपु[6] अपनायकैं, तुरत छिडावै[7] मांन ।
सबै सषिन सुष देत हैं, भेद-उपाय सुजांन[8] ।। २३७

अथ श्रीराधिकाकौ भेद-उपाय

यथा--प्रातहुतैं[9] मुष पांन दये नहि, रैंनि जगी अंषिया अनुरागी ।
याहीतैं मैं पठई सबही मिलि, बोलन साथ बडी बडभागी ।।
चालौ मिलौ उठिकैं हितसौं,उनकी असैं चाहि रही उरझागी[10] ।
चक्रत[11] चाहि चहूंदिसितैं, अवसेरि ज्यौं चंद-चकोरन लागी ।। २३८

अथ श्रीकृष्णकौ भेद-उपाय

यथा--लाल यती विनती सुनिये, चलिये वँही भौंनकौं प्रीतिकी रीतैं ।
औरको और भई जबतैं, वह जैसें रही सफरी बिन मीतैं[12] ।।

---

२३५. १ ख. ग. जाय समुद्रसों । २ ख. मोलक । ग. मोलकै । ३ ख. मुखवाहै ।
२३६. ४ ख. बोर । ग. और ।
२३७. ५ ख. जहां । ६ ख. आप । ७ ख. छिपावै । ८ ख. ग. सुजानु ।
२३८. ९ ख. प्रातहूं ते । ग. प्रातहूंतै । १० ख. ग. उर लागी । ११ ख. चकित ।
२३९. १२ ग. बिज सीतैं ।

वे उनकी सिगरी सषियां, अंषियां न रही उपमांनकी नीतें ।
मानौं रहे कुल पंकजके, बरषा रितु पाय बसंतकैं बीतैं ॥ २३९

अथ प्रनत-लक्षन

दोहा– महा मोहतैं कांमकी, अति आतुरता पाइ[1] ।
पिव प्यारी पाइन परैं, सो है प्रनत - उपाइ ॥ २४०

अथ श्रीराधिकाकौ प्रनत-उपाय

यथा–प्रानपियारेके मांन समैंसो, अली परी पायन यौं परसै हैं ।
फैलि रहे मुष ऊपरसौं कच, अंगन - रंगनसौं बरसैं हैं[2] ॥
ता छिन ही उपमां यनसौं[3], मन मेरेमैं आयकें यौं बरसैं हैं[4] ।
मांनौं घनांघन-जालकैं बीच, छिपाकर छूटि कछू दरसैं है ॥ २४१

अथ श्रीकृष्णकौ प्रनत-उपाय

यथा–राधेकैं पाय परैं हरि त्यौं, मुष ऊपर केस परैं बसरी हैं ।
छूटि कछू छबिता उन बीचतें, यौं बरसाय कछू निसरी हैं ॥
सों समता चुभि आंषिनमैं, मन मेरेमैं आयकै यौ वसरी हैं ।
ज्यौं घनकैं रबिजाल मही, कढि पार कछू किरनैं पसरी हैं ॥ २४२

अथ उपेक्षा[5]लक्षन

दोहा– मांन तजै जातें सुतजि[6], औरे परसंग आंनि ।
छूटि जाइ[7] जिहि मांन मन, उहै उपेछा जांनि ॥ २४३

अथ श्रीराधिकाकौं उपेछा

यथा–चंद्रिका फैलि चहूं दिसितैं[8] न, सु तौ चंद्रहासन चौंप चढचौ है ।
बोलें चकोर बंदीजनसे, त्यौं[9] कमोदनिपै दल भीर मढचौ है ॥
आजु मिलैगी कोई ब्रजचंदसौं, तू मिलै क्यौं न बियौग दढचौ है ।
सोहै नक्षत्र बीच[10] बढचौ यह, चंद नही रतिराज चढचौ है ॥ २४४

---

२४०. १ ख. पाय । ग. पाई ।
२४१. २ ख. अब अंगन-रंगनसौ परसै है । ३ ख. उपमाइनसौं । ४ ख. आयके यौं सरसैं हैं ।
२४३. ५ ख. उपेक्षा । ६ ख. सुतज । ७ ख. जाहि ।
२४४. ८ ख. दिसतें । ग. दिशतें । ९ ख. ते । ग. त्यौ । १० ख. बीचि ।

अथ श्रीकृष्णकौं उपेक्षा

यथा—सोहत सजल घन - फौज चहुं-वोर[1] फैलि ,
मधुप - मतंग सम उर आवरेषियें[2] ।
चपला न हौंहि ए चमक चंद्रहासनकी[3] ,
बंदीजन बरही पपीहा लेषैं लेषियें[4] ।
गरजें निसांन बोलें कोकिल नकीबगन ,
मांन - गढ ऊपर सजत भय भेषियें ।
पावस - समाज सुभ बैगै राजतिलक लैं ,
आजु रतिराज[5] एक राज जग देषियें ॥ २४५

अथ प्रसंग-बिध्वंसलक्षन

दोहा— चितमैं भय भ्रम आंनिकै, मांन तजत तिय पीय ।
सो परसंग[6] बिध्वंस यह, बरनत कबि कमनीय ॥ २४६

अथ श्रीराधिकाकौ परसंग-बिध्वंस[7]

यथा—घोरि-घटा-घन घेरि रह्यौ घर, त्यौं चपला चमकैं अति औंडी[8] ।
तैसिय सीतल मंद - सुगंध, लगैं परवाईन होगी कनौंडी ॥
चालिकै जो मिलिए बृजचंदसौं, चाहि धरैं मन मांहि अचौंडी ।
तू सुनि री सु यतै लषि बैरनि, देही[9] फिरैं केती कोयल डौंडी ॥ २५७

अथ श्रीकृष्णकौ प्रसंग[10] बिध्वंस

यथा—च्यारचौही औरतै जोरि[11] रहे, घन सोर करैं मिलि मोर पपीहा ।
चंचला छूटि लसै बहसै भर, भूमि[12] समीरन साथ कपीहा ॥
एती करौं बिनती मिलिए, रहि वाही तिहांरै सनेह जपीहा ।
दै हित नैंक निहारौ इतै, पर बाहरौ केतौ पुकारै पपीहा ॥ २४८

इति श्रीनेहतरंगे रावराजा श्रीबुद्धसिंह सुरचते मांनमांन-मोचन
बिधि निरूपणं नांम सप्तमो तरंग

---

२४५. १ ख. चहुं ओर । २ ख. अवरेषियें । ३ ख. चंद्रिहासनकी । ४ ख. लिखिये ।
५ ख. रितुराज ।
२४६. ६ ख. प्रसंग ।
२४७. ७ ख. ध्वंस । ८ ख. ओडी । ९ ख. ग. देती ।
२४८. १० ख. प्रध्वसंग । ११ ख. जोर । ग. जोरि । १२ ख. भूम ।

अथ पूर्वाअनुराग[1] बर्ननं

दोहा– पिय प्यारी दरसै जहां, चितकी लागै लाग ।
देषैं बिन दुष दहत[2] पुनि, सो पूर्वाअनुराग ।। २४९

अथ श्रीराधिकाकौ पूर्वाअनुराग

यथा– कुंडल छटन बनमाल उछटन[3] वै,
मुकट पलटन छूटी लटन[4] सुधारिगौ ।
भाल - भृकुटनि बरुनीनकी कटनि छिन,
छिनकी छटनि नैंन - सैंननिमैं सारिगौ ।
चंदन लिलाट मुष मुरलीकें थाट भटू,
भैंटन[5] भिटाय एही मोहनीसी डारिगौ ।
पीत - पटवारौ जमुनांके तटवारौ वही,
बंसीबटवारौ बटपारौ पाटपारिगौ[6] ।। २५०

अथ श्रीकृष्णकौ पूर्वा-अनुराग

यथा–काजरकैं षरसांन चढी, यौं भढी अभिलाष सनेह नवीनौं ।
पंषनिसी[7] पल पंषनिसौं, जे उभ्भंकनिकै चित चाइ[8] प्रवीनौं ।।
की जबरी नफरी[9] सफरी, उन देषत ही मन मोलकैं लीनौं ।
मैंन-मढीसी गडी हिय आय, बडी-बडी आंषैं बडौं दुष दीनौं ।। २५१

दोहा– इहि पूर्वा - अनुरागतैं, दसौ औस्था[10] आय ।
ते अब बर्नों कर्मतैं, सुनौं[11] सबै कबिराय[12] ।। २५२

अथ दस-अवस्था नांव[13] कथन

दोहा– अभिलाष सु चिंता गुन कथन, स्मृति उद्वेग प्रलाप ।
उन्माद, व्याधि, जडता रु भय, होत जु मिलन प्रताप ।। २५३

---

२४९. १ ख. पूर्वाणुराग । ग. जौरि । २ ख. वहन । ग.

२५०. ३ ख. उछतन । ४ ख. लटनि । ५ ख. भेटति । ६ ख. वाटपारिगो ।

२५१. ७ ख. पंखन । ८ ख. चाह्यो । ९ ख. तफरी ।

२५२. १० ख. ओसथा । ११ ख. सुतो । १२ ख. कविराई ।

२५३. १३ ख. नाभ ।

तहां प्रथमअभिलाष[1]-लक्षन

दोहा– मिली रहै गतिमति[2] जहां, जातिहूं पहलैं जाइ[3] ।
अब सरीर मिलिबौ चहै, सो अभिलाष कहाइ ॥ २५४

अथ श्रीराधिकाको अभिलाष

यथा– सोभा - सिंधु पारुनमैं[4] मांधुरी अपारनमैं ,
चंदके प्रहासन[5] उजासन धिरत[6] है ।
भौंहनकी भंगै छूटि अलकें - भुजंगैं मंद ,
हासन - तरंगनकी संग न भिरत है ।
देषें बिन जेरी निस - द्यौस उरझेरी नंद-
नंदनकें देषें बिन आली न सरत हैं ।
तिरि तिरि तेरू भये जोगीलौं जगेरू लागे ,
मेरे नैन हेरूए पषेरूलौं फिरत हैं ॥ २५५

अथ श्रीकृष्णको अभिलाष

यथा–अंबर धारैं[7] निलंबरसौं, बडे नैंननि सुछ-सरोज[8] निगाहैं ।
बैंन[9] सुधासे सुधाधरसो मुष, देषो वा एक[10]या कुंजकी राहैं ॥
चाहैं मिल्यौ अब ही उनसौं, सब जे मति जे गति कीनी बिदा हैं ।
ता दिनतैं लागी वैही अथाचित, वैही मन वैही बिथा हैं ॥ २५६

अथ चिंतालक्षन

दोहा– कैसैंकें मिलिए मिलैं, हरि[11] कैसैं बस होइ ।
यह चिंता चित मित्रकी, बरनत हैं सब कोइ[12] ॥ २५७

अथ श्रीराधिकाकी चिंता

यथा– जंत्र अनुराग सौच[13] तंत्रन सकोच मंत्र ,
मृदु मुसकांवनिकें सोभा सरसैं रहे ।
भौंह - बरुनीन साज चितवनि चौककरि ,
अंग - अंग न्यारे करि अंगनकौं ले रहे ।

---

२५४. १ ख. अभिलाषा । २ ख. अति मति । ३ ख. पहुँले जाई ।
२५५. ४ ख. ग. पाटन । ५ ख. प्रहारन । ६ ख. घिरत ।
२५६. ७ ख. धार । ८ सुच्छ-सरोज । ९ बेनु । ग. बैन । १० ख. यैक ।
२५७. ११ ख. हर । १२ ख. कोय ।
२५८. १३ ग. सोच ।

गूढ़ गति केती औ अगूढ गति केती छिन ,
छिनकी छ़लावनिसौं छाय उरझै रहे ।
बृंदाबंनचंद - छबि देषत तिहारी नैंन ,
वा तियके भगलके वाजीगर ह्वै[1] रहे ॥ २५८

अथ श्रीकृष्णकी चिंता

यथा– चितांमनि चितबृत्ति रहे चाय भाय छबि ,
छीर गहराई नीर - गति सरसै रहे ।
तारे बिष-अमल[2] सतारे बिसतारे लषि ,
सुरा पुतरीन नीसतारे छक छै रहे ।
सुधा मंद - हासी बरसाय सरसाय छबि ,
लछि लाइ रूपबस जंत्र बिरझै रहे ।
चंदमुषी ए री मुषचंद लषै तेरो नैंन ,
बृंदाबनचंद्रके समुद्र सम ह्वै रहे ॥ २५९

अथ गुनकथन-लक्षन

दोहा– जह गुन-गन गन देह-दुति[3], बरनहुं सहित असेष ।
ता कहुं जानहुं गुन - कथन, मनमथ - मंत्र बिसेष ॥ २६०

अथ श्रीराधिकाकौ गुनकथन

यथा–कंचन जौ जड़ता तजि देय तौ, अंगके रूपसौं रूप दिषावें ।
षंजन मीन सुवा पिक तिर्जक[4], बिद्रुम[5] जाति कुजाति लहावें ॥
राधिकाके अंग नीके हौं बांनिक, जांन कहैं उपमांन न आवें ।
चंद कलंक बिना जन होइ तौं, तौ मुषचंद समांन कहावें ॥ २६१

अथ श्रीकृष्णकौ गुन-कथन

यथा–मंडि[6] सुधानिकी धार चकोरनि, भौंरनि नेहलता बरसावै ।
षेद तजै भ्रमबेके[7] विभेदकौं, रैनि उदैके प्रभावहि आवें ॥

---

२५८. १ ख. है ।
२५९. २ ख. विस-अमल ।
२६०. ३ ग. देहु-दुति ।
२६१. ४ ख. तिर्यक । ५ ख. बिंदुम ।
२६२. ६ ख. मुंडि । ग. मंड । ७ भ्रमिवेके ।

ताप तजै सजै आंनद आंषिन, ज्यौं मृदु-भाषनि[1] साषि बतावैं ।
चंदमुषी बृजचंदके अंगकी, सूरज तौ समता कहु पावै ।। २६२

अथ श्रीस्मृति-लक्षन

दोहा– औरे[2] कछू सुहाइ तहं, भूलि जाय सब कांम ।
मन मिलिबेकी कांमनां, ताकौ सुमृति[3] नांम ।। २६३

अथ श्रीराधिकाकी स्मृति

यथा–काहूसौं बात कहै न सुनें, कछु षेलै नहीं छिन मंदिर मांहा ।
लागै नही मनहूं किंहि ठौर, सु औरसे लागत घांम रु छांही ।।
भूषन दूषनसे पहरैं, सो उतारि धरैं यो उठै सतराही ।
भोजन भांति सुहात न भांति सो, काल्हिसी राधिका आजु तौ नांही।।२६४

अथ श्रीकृष्णकी स्मृति

यथा–आपहीं जाय लगी कितकौं, दिन देह-दसा उर भांति न आंनैं ।
साथ सषा पर चैन रुचै, औरैं बातनके न बितांन बितांनैं ।।
नीद न भूष न काल्हिहीतैं, कछू नांही हितूनिहूंकौं मन मानैं ।
दैन लगी दुषकौं दुषियां, अंषियांनकी[4] वैं अंषियां नहि जांनैं ।। २६५

अथ उद्वेगलक्षन

दोहा– षिन रोवै हुलसैं हसैं, उठि चालै उझकाय ।
जित-तित देषि चिते रहै[5], सो उद्वेग कहाय ।। २६६

अथ श्रीराधिकाकौ उद्वेग

यथा–चक्रतसी उझकीसी जकीसी, थकी बतियांनसी आंनत जीसैं ।
पीरैं भई[6] अंग हेरै नहीं, संग औरकी और कहै करि रीसैं ।।
कीजे कहा उपचार बिचार[7], निहारिकैं हारि रहे बिसै बीसैं ।
औरै भई ढंग जांनी परै नही, आजु नही रंग राधिका दीसैं ।। २६७

---

२६२. १ ख. भाषन ।
२६३. २ ग. औरं । ३ ग. स्मृति ।
२६५. ४ ख. अखियानकी ।
२६६. ५ ख. चितते रहै । ग. चितै रहै ।
२६७. ६ ख. ग. पीर भई । ७ ख. बिचारि ।

अथ श्रीकृष्णकौ उद्वेग

यथा–लागैं न क्यौंहूं न बातनमैं, मंन आंगन पौरिन मंदिर मांहीं ।
चक्रतसे[1] चित चौंकि रहैं, उठि चालैं कहूं बरजै बिरझांही ।।
एकटगी[2] टगसी जक लागीसी, आषैं रही बस मंत्रन गाहीं ।
कीजै कहा गति कैसी भई, मति आजु कछू हरिकौ सुधि नाहीं ।। २६८

अथ प्रलापलक्षन

दोहा– थिर न रहत कहुं[3] गैर मन[4], अति अताप तन-ताप ।
कहै कछू बोलै कछू, कहि तासौं परलाप[5] ।। २६९

अथ श्रीराधिकाकौ प्रलाप

यथा–करि साज संगीत सषी सुष-हेत, सु तो दुष देत अपूठी झुकीसी ।
भाय[6]मनायकैं सेवा करैं, दिन ही दिन देवता जांनो[7]बकीसी[8] ।।
जाय कहां करै को उपचार, सहाय करै मति होत रुकीसी ।
सारी सषीन रही ज्यौं जकीसी, ह्वै राधिके आजु कछू उझकीसी ।। २७०

अथ श्रीकृष्णको प्रलाप

यथा--बोलैं कछु उठि बोलै[9]कछू, दिल षोलै नहीं गिनैं घाम न छांहीं ।
लागैं नही पल नींद न भूष न, जांनिये कौन दसा मन मांहीं ।।
टौंनांके टूंमेसे लागै भटू, सुनि तू लषि री गहिकैं बलि बांहीं ।
कै कितहूं परछांही परी, नंदनंदन आजु अकेलेसे नांहीं ।। २७१

अथ उन्मादलक्षन

दोहा-- बन - उपवन उद्दीप जे, चित - मति यौं दरसाय ।
सुष सब दुष ह्वै जात जह, सो उन्माद कहाय ।। २७२

अथ श्रीराधिकाकौं उन्माद

यथा– सुधासौं छकीसी बकी नेहसौं जकीसी रहै ,
सोभासौं झषीसी उझकीसी नई नीकी हैं ।

---

२६८. १ ख. चक्रितसे । २ ख. येकटगी ।
२६९. ३ ख. कहूं । ४ ख. ग. ठौर मन । ५ ख. प्रलाप ।
२७०. ६ ख. माय । ७ ख. दिन देवता जानि । ८ ख. थकी सी ।
२७१. ९ ख. उठि डोलैं ।

अलकैं जंजाल जटा - जाल त्यौं सुरण डौरे ,
भगवां बिसाल लाल अंबर नजीकी हैं ।
औरसौं न बोलै जिय षेलमैं न षोलै रहि ,
बातैं बरजीसी चितमति बरजीकी है ।
षंजनसौं तीषी हैं सरोजनि सरीकी[षी] लसैं ,
आली तेरी आंषैं किन सिद्धनसौं सीषी हैं ॥ २७३

अथ श्रीकृष्णको उन्माद

यथा--नांही कलंक कियें मुष करौसो[1], पापनकी अवली उमही है ।
नांही सितंबर कोढी कुढंग, 'बियोगन-श्रापन देह दही है'[2] ॥
छीन भयेंहू लयें[3] षलता, अरी देषि सो याकी ए रीति नई है ।
छंदसौं ए नहिं सोहैं अमंदसो, चंद नही यह राह सही[4] है ॥ २७४

अथ व्याधिलक्षन

दोहा– प्रीति लगैं मिलिबो नहीं, प्रगटैं ताकी पीर ।
तब बिबरन ह्वै जात जति, उपजति व्याधि सरीर[5] ॥ २७५

अथ श्रीराधिकाकी व्याधि

यथा-- आजु बेसम्हार बलि बिरह बिसालनसौं ,
ल्याये परजंक पर आंगनमैं[6] आरसे ।
छूटि रहे केस लंक लबढि - लबढि बाहैं ,
फैली गौरें रंग उर अलकैं बिहारसे ।
छकी छबि देषि मति रति नां रती न गति ,
रंभाहू न अति रहे ऊपमके[7] भारसे ।
चंद्रिका सी चेरी रही चकई सी चौकि रह्यौ[8] ,
चाकरसौं चंद्रमा चकोर चौकीदारसे ॥ २७६

---

२७४. १ ख. तेरोसो । २ ख. तैसी वियोगनि देह देही है । ३ ख. लखें ।
४ ख. सई ।

२७५. ५ ख. शरीर ।

२७६. ६ ख. अंकनमें । ७ ख. उपमांके । ग. उपमके बहारसे । ८ ख. रही ।

अथ श्रीकृष्णकी व्याधि

यथा– देहकी सकल सुधि ग्वालनकी सुधि भूलै ,
देषै तन छबि आंषैं आवत हैं आंसु री ।
बसन - असन छिन - छिनमैं अभाये लागैं ,
चंद्रिका चितासी रु बिछौंनां भये डांसु री ।
हरि सांम्हैं[1] हेरि नैंन[2] देषि-देषि लागैं दुष ,
भरि गयौ[3] होयौ गरि गयौ तन - मासु री ।
'कहूं बनमाल नंदलाल कहूं पीतांबर[4]' ,
कहूं मोर - मुकट कहूंक परी बांसुरी ।। २७७

अथ जड़तालक्षन

दोहा– सुष दुष होत समांन सह, भूलि जात सुधि अंग ।
गति - मति देत बिसारिकैं, जड़ताकौ यह रंग ।। २७८

अथ श्रीराधिकाकी[5] जड़ता

यथा–लागि रही ताली चढी भृकुटी बिसाल अलकनि[6] ,
जटाजाल छूटी छबिता अछेह है ।
आसपास सषियां जमाति जग्यासी समाज ,
चंदन भसम लसै उपमांके मेह है ।
असी गति भईसी गईसी क्यौं रहीसी सुधि ,
जात न कहीसी यौं बहीसी रही देह है ।
निसि - दिन साधे बृजचंदके अराधेकौ सौ ,
सिवकी समाधि कैधौ राधेकौ सनेह है ।। २७९

अथ श्रीकृष्णकी जड़ता

यथा–छूटे त्यौं बार जटाजूटीं-जाल, बिभूतिसो चंदनके बरकीसी ।
बोलै नहीं पल षोलै नही षुलै, भाल चढी भृकुटी भरकीसी ।।
जांनै को कौनैं किये यन हाल, लसैं उपमां ज्यौं सुधा झरकीसी ।
आधे भये नंदनंदन आजुसौ, साधें समाधि दिगंबरकीसी ।। २८०

---

२७७. १ ख. सामें । २ ख. हेरि नेक । ३ ख. वरि गयो । ४ ख. कहूं नंदलाल बनमाल क प्रीतपट ।

२७९. ५ ग. राधिकाकौ । ६ ग. अलकिनि ।

अथ करुणां बिरहलक्षन

दोहा– सुष उपाइ छूटत सबै, उर आकुलता मांनि ।
होत जहां करुनां बिरह, दंपतिकैं उर आनि ।। २८१

अथ श्रीराधिकाकौ करुनाबिरह

यथा–केतौ सिषाइकैं मैं[1] पठई, नफरी अजौं कौंनकैं संग लगी है ।
आपनीं-आपनीं चाढ महा, नहि जांनत हौं[2] मति मोसौं भगी है ।।
आपकी आप कहैं न बनैं, कोऊ जांनै कहा परपीर जगी है ।
कै कोई और जगी हियमैं, कै भई सषि सौतिनहीकी सगी है ।। २८२

अथ श्रीकृष्णकौ करुनांबिरह

यथा–जाय मिली उत आप नही, अभिलांषनि साथ महा अनुरागी ।
कौंनसौं या कहिए[3] सुंनिए, सुंनि रैंनि-दिनां अति ही उरभागी ।।
ए इनकी लषि रीति नई, सो कही हू न जात जिती मन आगी ।
देषें बिनां दुष दैंन महा[4], अषियां फिरि मेरी ए मोहीसौं लागी ।। २८३

अथ प्रवासलक्षन

दोहा– गवन करत प्रीतम-प्रिया, बिछुरि कौंनहूं[5] काज ।
तांहि प्रवास बषांनिकैं[6], कहत सबै कबिराज ।। २८४

अथ श्रीराधिकाकौं प्रवासबिरह

यथा–जा दिनतें बिछुरे नंदनंदन, ता दिनतें कछु नीति न नैंगौ ।
दीन भयौ दिनही-दिनपैं, रैंनि आवत ही दूनौं देषि नसैंगौ ।।
मोहि भरोसौ इते पर हौ, सुनही उनहूंकैं बियोग बसैंगौ ।
जांनतही पियकैं बिछुरै, हिय काचकीं चूरि लौं टूक ह्वै जैंगौ ।। २८५

अथ श्रीकृष्णकौ प्रवास-बिरह

यथा–देषें बिनां उनकै कबहू, न[7] रहे न जुदे छिनहूं रतियां है ।
मोहि भरौसौ न हौं इतनौं[8], इनहूं फिरि कौंन गही गतियां है ।।
आवत एक[9] अचंभौ यहैं, सुनि री चित दै करिए बतियां है ।
वा बिछुरेंतें न फूटि अहूटि, न टूटि छटूक भई छतियां है ।। २८६

---

२८२. १ ख. मैं । २ ख. महि जानत हों ।
२८३. ३ ख. कहियें । ४ ख. दुख देत महा ।
२८४. ५ ग. कौनहु । ६ ग. बषांन ।
२८६. ७ ख. कबहूं फिर कौन । ८ ख. इतनें । ९ ख. येंक ।

दोहा– या प्रवासमैं होत हैं, भय - भ्रम निद्रा ग्रांनि ।
पुनि पत्री द्वै भांति सुनि, बाक्य लिखन मन मांनि ।। २८७

अथ भय-भ्रमलक्षन

दोहा– जहं प्रवासके बिरहतें, उपजत है भय - भ्रम ।
तासौ भय भ्रम कहत है, सब कबि मन-बच-क्रम ।। २८८

अथ श्रीराधिकाकौ भय-भ्रम

यथा–सीस नछिन्नन[1] मांग बनाय, दिये ससि टीकासो भाल जतांईं ।
बोलकै बोली उलूकनि त्यौं, दसहूं दिस चीर दसा दरसांईं ।।
संग सषीन चुरैलनिसौं, घन ज्यौं तम छूटिकैं केसनि छांईं ।
तू सुनि री बृजचंद बिना, ग्रलि राकिसी तैसीं निसा फिरि ग्रांईं ।। २८९

अथ श्रीकृष्णकौ भय-भ्रम

यथा–कंठ[2] षद्यौतनके गहनां, बनि ग्रंबर नील - घटा घहरांईं ।
त्यौं चपला चमकें ग्रति हाससो, केस षुले धुरवा छबि छांईं ।।
बोलत बोल मयूरनकें मिस, दादरकें बिछियांन बनांईं ।
चंदमुषी बिन तू सुनि री, निस फेरि चुरेलिनि ज्यौं चलि ग्रांईं ।। २९०

अथ निद्रालक्षन

दोहा– ग्रति बिरहै[3] परवासतें, निद्रा ग्रावत[4] नांहि ।
तांसौ निद्रा सबैं कबि[5], समझि लेहु मन मांहि ।। २९१

अथ श्रीराधिकाकी निद्रा

यथा–मोहनकौं दुष दीनौं सदा ही, इहीं दुषदायक दूनी दुषाई ।
जो चरचा इनकी जु सुनी, सु ग्रबै वह ग्रापसौं जांनिही पाई ।।
दाव बन्यौं सु करै न कहा, तकि मौंसर कौं उन संग सिधाई ।
नेह नए[6] इन नैंननिकौं, बिछुरें निस नाहकें नीद न ग्राई ।। २९२

---

२८९. १ ग. नछित्र ।

२९०. २ ख. कंच ।

२९१. ३ ख. बिरह । ४ ख. ग. ग्रावति । ५ ख. कहत कबि ।

२९२. ६ ख. नेह नयो ।

अथ श्रीकृष्णकी निद्रा

यथा–वा तियकैं बिछुरें बिछरो[1], सु कियें उपचारनहूं फिरि आगी ।
आंयेतें[2] आय[3] है लार लगीं, उमगी अंग-अंग षरो अनुरागी ॥
आंवनद्यौं नहि मैंहूं अबे, रसमैं रत ह्वै निस-बासर जागीं ।
लागें नही पलहू पलकें, नैंनां नीद[4] गई उनकें संग लागी ॥२९३

अथ पत्रीबर्ननं

दोहा– पत्री दोइ[5] प्रकारकी, बरनत है कबिराज ।
एक लिषन इन बाकि पुनि[6] तिनके सुनौं समाज ॥ २९४

अथ लिषनपत्रीलक्षन

दोहा– बिरह-बिकल अकुलाइकें, लिषि पठवत[7] कछु बात ।
लिषन पत्रिका ताहि सब, कबिकुल बरनत जात ॥ २९५

अथ श्रीराधिकाकी लिषन पत्रिका

यथा– लिषन सकत तातैं उतही पठाई आयौ ,
ह्वैहै रितुराज नेहआंचतें न आंचियौ ।
देषि-देषि अलि अषरांनकी[8] अवलि मेरे ,
बिरह - अंदेसेके संदेसें चित सांचियौ ।
कोकिला[9]कासीद मुष-बचन कहै सो मांनि[10] ,
पौंन डाक[11] चौकीदार चाकरी न रांचियौ ।
राती अनुरागको सुहाती फूल - छापनि ,
धपाती नव - पत्रनकी पाती लाल बांचियौं ॥ २९६

अथ श्रीकृष्णकी लिषनपत्रिका

यथा– केता करि लिष्या फेरि जादा करि लिष्या जात ,
मिलनां न औधिपें बिसारौ मति मन है ।
ज्यौं-ज्यौं यादि आवं वैही बातें फिरि यादि करि ,
देषनां न औरका सुहावै कछू तन है ।

---

२९३. १ ख. बिछुरी । ग. बिछुरें । २ ख. आयतें । ३ ख. आई । ४ ग. नींद ।

२९४. ५ ख. दोय । ६ ख. वाक्य पुनि ।

२९५. ७ क. यठवत ।

२९६. ८ ख. अषरानिकी । ९ ग. कौकिला । १० ग. मांन । ११ ग. डांक ।

सोई सुभ घरी सुभ दिन सुभ छिन सोई ,
रावरें दरस लागी आवें एकपन हैं ।
कहनां न जात कछु कह्यो इस हालका सो ,
सांची प्रीति जालिम जवालिका सदन है ॥ २९७

अथ बाक्य-पत्री[1] लक्षन

दोहा– कहि पठवै मुषबचन कछु, बिरह बिकलता होइ ।
बाकि - पत्रिका कहत हैं, तासौं सब कबि लोइ ॥ २९८

अथ श्रीराधिकाकी बाक्य-पत्रिका

यथा– फूले सर कवल तड़ाग उडि मिले भौंर ,
ह्वै चहुं ओर चौंर झौंर[2] झुकि रहिये ।
गालिब गुलाब चंपा भौरै हैं रसाल तर ,
कंचन चंबेलिनकी चगुली न चाहिये ।
उज्जल अवासनकी भासें चादिनी उजासें ,
देषि - देषि जासें दिन - दिन न निबाहिये ।
बिरह - अंदेसौ आंषै देषि जाय तैसौ सुनि ,
पंथी बीर[3] इतनौं संदेसौ जाय कहिये ॥ २९९

अथ श्रीकृष्णकी बाक्य-पत्रिका

यथा– यौंही बरसांवन सु आयै[4] बर सांवनकौ ,
नेह सरसांवन बिरह तन तैसौ है ।
मोर[5] मिलि गावन पपीहै परचावन पै ,
नांही पर-चांवन समाज जिय अैसौ है ।
आवनकैं मग अैंसी धारी बृत[6] लोंचनन ,
ज्यौं चकोर चंदबृत धारनकौं जैसौ है ।
आवन अदेसेकौ संदेसौ लिषियौं न अजौं ,
कहियौ हमारौ यौ अंदेसेकौं[7] सदेसौं है ॥ ३००

---

२९८. १ ख. बाक्य पत्रीका । टि.—छन्द संख्या २९८ [ख] प्रतिमें नहीं है ।
२९९. २ ख. ह्वै ह्वै चहूँ ओर ठोर भौंर । ३ ख. वार ।
३००. ४ ख. आयो । ग. आयौ । ५ ग. मौर । ६ ख. धारी व्रत ।
७ ग. अंदेसे क्यौं ।

दोहा– बिछरत[1] प्रीतम - प्रिया जहं, बिप्रलंभ-सिंगार ।
बरन्यौं च्यारि प्रकार यौं, करिकै बहु बिस्तार ।। ३०१

दोहा– मांन पूर्ब-अनुराग पुनि, करुनां बहुरि परवास[2] ।
कहे जथामति बरनिकैं, बुधि-बल कछुक प्रकास ।। ३०२

इति श्रीनेहतरंगे रावराजा श्रीबुद्धसिंह सुरचते प्रवास–
बिरह निरूपणनाम अष्टमो तरंग

*

अथ भावबर्नन

दोहा– रस सो ब्रह्मस्वरूप है, कहत सबै कबिराव ।
प्र[पु]नि प्रगटत है भावतैं, तातैं बरनौं भाव ।। ३०३

अथ भावलक्षन

दोहा– मिलि दंपतिकी प्रीति जो, प्रगटत अषिया आय ।
ताहीसौं सब कहत हैं, भाव कबिनके राय ।। ३०४

अथ भावनांम

दोहा– पांच भांतिके भाव हैं, सुनि बिभाव अनुभाव ।
थाईभाव[3] र[4] सात्विकी, अरु संचारी - भाव ।। ३०५

अथ विभाव लक्षन

दोहा– जिनकै जिनते[5] प्रगट ह्वै, मैंन बढ़ावत प्रीति ।
आलंवन उदीप करि, सो बिभाव द्वै रीति ।। ३०६

अथ आलंवन उद्दीपनबर्ननं

यथा– प्यारी पिय वृजचंद सकल, आंनंदकंद अलि ।
कोकिल-कुल कल-कुहक कुंज, कुंजनि गुंजत अलि ।।
सरद - चंद दीपति अमंद - छबि, छंद - छंद सुष ।
सौरभ - सुमन - समाज सेज, संगित गुन - गन मुष ।।

---

३०१. १ ख. बिछुरत ।
३०२. २ ख. प्रवास ।
३०५. ३ ख. स्थाई भाव । ४ ख. रु ।
३०६. ५ ग. जितनै ।

कलहास बास उजास ग्रिह, बिबिधि बास सुषनिधि धरनि ।
संपति समाज सब रितुनके, 'आलंबन दीपन बरनि[1]' ।। ३०७

अथ अनुभावलक्षन[2]

दोहा– आलंबन उदोपकैं, पीछैं उपजत जात ।
सो अनुभाउ[3] बषांनिऐं, प्रीतम हित अधिकात ।। ३०८

अथ अनुभावनांम

दोहा– देषनि बोलनि चलनि हित[4], चुंबन औ परिरंभ ।
इत्यादिक अनुभाव हैं, बरनहुं करि आरंभ ।। ३०९

अथ स्थाईभावकथन

दोहा– रति थाई सिंगारमैं, रहत हासिमैं हासि ।
करुणांकै बिचि सोक है, रौद्रहिं क्रोध बिकासि ।। ३१०

दोहा– बीर बीच उतसाह है, भयहि भयानक बास ।
बिभछा मधि निंदा बसय, बिसमय[5] अदभुत यास ।। ३११

दोहा– नऊं सांत रस तास मधि, थाई है निरबेद[6] ।
सो सरूप सब बरनमैं, सब जन[7] मांझ अभेद ।। ३१२

अथ सात्विक-भावकथन

दोहा– स्वेद रोम सुरभंग कहि, 'कंप बिबर्नहि जांनि[8] ।
आंसू प्रलय स्थंभ ए, सांत्विक - भाव बषांनि ।। ३१३

अथ संचारी-भावलक्षन

दोहा– सागर मांझ तरंग ज्यौं, सबै रसनिमैं होत ।
ते संचारी जानिए, जिनकी बुद्धि उदोत ।। ३१४

अथ संचारी-भावनांम

यथा– निर्बेद, गलांनि, संका, आलस, दय, निमोह ,
श्रम, मद, कोह, मति, सुमृति, बषानिये ।

---

३०७. १ ख. उद्दीपन आलंब बरनि ।
३०८. २ ख. अनुभाव लक्षितं । ३ ख. अनुभाव ।
३०९. ४ ग. चित । टि०—छन्द संख्या ३०९ ख. प्रतिमें अपूर्ण है ।
३११. ५ ख. विस्मय ।
३१२. ६ ख. निर्वेद । ७ ख. सब जग ।
३१३. ८ पंकहि बर्नहि जानि ।

ब्रीडा, धृति, नीद, निंदा, जड़ता, बिषाद, चिंता ,
उतकंठा, आवेग, चपलता, प्रमानिये ।
सुपन, प्रबोध, ब्याधि, उग्रता रु उन्माद ,
त्रक, त्रास, भय, गर्व, हर्ष, उर आंनिये ।
मरन, अपसमार, सहित संचारी - भाव ,
तेतीस सुकबि एई नीकें पहिचांनिये ॥ ३१५

दोहा– 'यनि भायनि[1]' मिलि होत है, रस-सिंगार अनियास ।
ता सिंगार करि करत हैं, तेरे हाव प्रकास ॥ ३१६

अथ हावनांम

दोहा– हेला लीला मद बिहृति, किलिकिंचित बिब्बोक ।
मोटायत बिभ्रम ललित, कुटमित परगट लोक ॥ ३१७

दोहा– बोधक बहुरि बिलास भनि, बिंछित्यादिक हाव ।
तिनके लक्षन लक्ष अब, सुनौं सबै कबिराव ॥ ३१८

अथ हावलक्षन

दोहा– नेंक न लाज समाजकी, महां मानियत कांनि ।
लसत जहां पीतम प्रिया, हेला - हाव सुजानि ॥ ३१९

अथ श्रीराधिकाकौ हेला-हाव

यथा–नेंननि अंजनकै धरिबै, धिरबै भृकुटीनकी जूटै निकाई ।
छूटिबै पीठिपैं बारकै भारनि[2], भौंर-कतारनकी छबि छाई ॥
आवन कुंजनकै प्रति-कुंजन, केसरि-घौरि-प्रभा बगराई ।
राधे सुनौं कछु काल्हिहीतैं, जु लए इनि[3]बातनि मोल[4] कन्हाई ॥ ३२०

अथ श्रीकृष्णको हेला-हाव

यथा–अंगके रंगसौं[5]हासी - प्रसंगसौं, भौंहके भंगनते छबि छायौ ।
कैऊ उपंगनके ढंगसौं, दुनि देषन केसरसौं सरसायौ ॥

---

३१६. १ ख. इनि भाईन ।

३२०. २ ख. भारन । ३ ग. इन । ४ ख. मोलि ।

३२१. ५ ख. रंगसे ।

राकाकी आजु निसा मिलि आय, लयौ[1] केते भायनसौं[2] परसायौ ।
नंदके नंदनकौ बिनि मोल, गयौ मन हाथसौं हाथ न आयौ ॥ ३२१

अथ लीला-हावलक्षन

दोहा– पिय - प्यारी लीला करत, अपनैं मनकैं भाव ।
बहु भांतिन अभिलाषतैं, बरनौं लीला - हाव ॥ ३२२

अथ श्रीराधिकाकौ लीला-हाव

यथा– तेरे बिन देषें तिन्हैं चैंन कैसै होइ जिन ,
लोचन - चकोरन पियूष - रस चाष्यौ है ।
बोलिनिमैं उझकि-उझकि[3] झांकि-झांकि जात ,
लाष भांति देषनकौं चित अभिलाष्यौ है ।
कबहूक चित्रमैं बिचित्र आपुचित्र लिषै ,
पाय परि प्यारी मृदु - बैंन मुष भाष्यौ है ।
आंगनतैं कुंजनलौं कुंजनतैं आंगनलौं ,
आंगन औ कुंज भौंन एकै[4] करि राष्यौं है । ३२३

अथ श्रीकृष्णकै लीला-हाव

यथा–बाहरितैं घरमैं फिरि बाहरि, आतुरता अति ही उर झा[जा]गी ।
कुंजनतैं प्रति कुंजनतैं, सषा संगनतैं मिलि षेलबै भागी ॥
अैसैं नई दिन च्यारिकतैं, बिधि कैसें कही परै जात अघागी ।
एरी अली तेरे देषनकी, बृजचंदकौं चाह चुरेल ह्वै लागी ॥ ३२४

अथ मद-हावलक्षन

दोहा– अधिकाई लहि प्रेमकी, उपजत हिये गुमांन ।
सो मद - हाव बषांनियै, जांनहु सुकवि सुजांन ॥ ३२५

अथ श्रीराधिकाकौ मद-हाव

यथा-- साथ सषीनमैं षेलिबे[5] कौंन, मिलै मन भूलि रचै नहि कोई ।
फूलेसे गात लसैं सरसात[6], सो लाज सबै लषि बेनकी षोई ॥

---

३२१. १ ख. लखो । २ ख. भार्यानिसौं ।
३२३. ३ ख बेलिनमें उरझि-उरझि । ४ ख. येकें ।
३२६. ५ ग. षेलिबौ । ६ ख. लसें सर साथ ।

जा दिनहींतैं मिली बृजचंदतैं, भोजनकी सुधि जात न जोई ।
कोई हसौ भलि कोई रिसौं भलि, कोई कहौ कि सुनौं भलि कोई ।। ३२६

अथ श्रीकृष्णको मद-हाव

यथा–देषैं न भेषैं बिसेषै कहूं, अवरेषैं लषै टगी एकमैं राषैं ।
चौंकैं चकै भ्रमैं भूलैं सुभाव, सौं चाउ[1] उपाय करै यक[2] पाषैं ।।
जानैंहौ असैं अबै[3] नंदनंदन, डोलत क्यौं बृजपैं रज नांषैं ।
रैंनि जगी कछु आजुहीतैं[4], अंषियां लगी दैंन सनेहकी साषैं ।। ३२७

अथ बिहति-लक्षन[5]

दोहा– जाहि न बोलन देति है, लाज गहत[6] है आइ ।
बिहति-हाव सो बरनिए, बांनिक बिबधि[7] बनाइ ।। ३२८

अथ श्रीराधिकाकौ बिहति-हाव

यथा–सौंहैं[8] किये न हसैं सरसैं, तरसैं जु तऊ अभिलाषनि ओरी ।
चौंकति चक्रतसी चितहूं, अंगहूं न अरै धरै लाज निहोरी ।।
कौलग वा बृजचंदसौं बावरी, चायनकी भरि है ढंग ढोरी ।
राधिकाकी अजहूं लगतै, अंषिया अषियांनतै जात न जोरी ।। ३२९

अथ श्रीकृष्णकौ बिहति-हाव

यथा–आजु कछू नंदनंदनसौं, वलि राधे उराहनें दैन भुकैं हैं ।
केते अगूढ़ औ गूढ़ किते, कहिबे सुनिबेकौं कितेक बकैं हैं ।।
यौं सकुचे सरसे दरसे, मिलि उप्पमताईसौं असैं जकैं हैं ।
चंदसौं ह्वै अरबिंद[9] मनौ, मुषचंदकै साम्हैं न ह्वै न सकैं हैं ।। ३३०

अथ किलिकिंचितलक्षन

दोहा– स्रम[10] अभिलाष सगर्ब मिलि, क्रोध हरषकौं जांनि ।
उपजत संग सदा तहां, किलिकिंचित[11] सो मांनि ।। ३३१

अथ श्रीराधिकाकौ किलिकिंचित

यथा–देषि रहै हसिबौई करै, मिलिबेकौं अरै मन मोद बढ़ावै ।
चौंकै चकै बकै बावरीसी, थिर हू न रहै ढिग कौंन पठावै ।।

---

३२७. १ ख. चाव । २ ख. इक । ३ ख. कवै । ४ ख. आजहीतें । ग. आजहीतें
३२८. ५ ख. बिहत-लक्षन । ६ ख. गहति है । ७ ख. विविध ।
३२९. ८ ग. सोहैं ।
३३०. ९ ख. अरविंद ।
३३१. १० ख. श्रम । ११ ख. किलकिंचित ।

आजु ए तेरे सुभाव अली, वृज बैद बिनां भ्रम कौंन कढ़ावै ।
बांनसे[1] नैंन सरोजसे तांनि, कमानसी भौंहैं उतारै चढ़ावैं ॥ ३३२

अथ श्रीकृष्णकौ किलिकिंचित

यथा—चाहत है मिलिबौ कबहू, कबहू सजै अंग सिंगारनकैं हैं ।
काहूसौं रीझि हसै रिसै काहूसौं, काहूकै संग जकै उझकै हैं ॥
ये बनि ऐसे सुभाउ[2] अली, सबकी[3] मति देषतहो जु थकें हैं[4] ।
लागे रहैं थिरहूं न कहूं, नैंना आजु तौ सूधै न ह्वै न सकैं हैं ॥ ३३३

अथ बिब्बोक-लक्षिन

दोहा— नेह - रूप अभिमांनसौं, तहां अनादर होइ[5] ।
उपजहै[6] इह हाव तहं, कहि बिब्बोकहि सोइ ॥ ३३४

अथ श्रीराधिकाकौ बिब्बोक-हाव[7]

यथा—एक समै बृषभांनलली, चली कुंजगलीनि अली संग लायें ।
ग्वालनके गनमैं नंदनंदन, जानि कढे भुजमूल मिटायें ॥
नैन चढ़ाय हियें अकुलायके, वैंन कहे रिसके सतरांये ।
बावरी कौंन बकै दिनराति, न जात न[8] जाति सुभाव मिटाये ॥ ३३५

अथ श्रीकृष्णकौ बिब्बोक-हाव

यथा—साजें सिंगार सषीनकी संगति, देषी हुती बृषभांनदुलारी ।
लालन चित्त घनें ललचें, भुज-भेटनकौं बढ़ि बांह पसारी ॥
नैंनकी सैंननि संक झुकी, उझकी कटु-बैंन उचारत गारी ।
जांनै कहा चतुराईकौ जो, रसआषर गोरस-बेचनहारी ॥ ३३६

अथ मोटायति-हाव-लक्षन

दोहा— भावनके संगसौं जहां, उपजत सात्विक भाव ।
ताहि छिपावन कीजिए, सो मोटायत हाव ॥ ३३७

---

३३१. १ ग. बानसे ।

३३३. २ ख. सुभाव । ३ ख. सचकी । ४ ख. न होय सकै हैं ।

३३४. ५ ख. होय । ६ ख. उपजत है ।

३३५. ७ ख. विघोक-हाव । ८ ख. जाति न । ग. जातनि ।

अथ श्रीराधिकाकौ मोटायति-हाव

यथा—बैठी हुती गुरु लोगनमैं, भये सांझ लिये उपमान तटी हैं ।
रातिके भूषनसौ[1] हरि देषि, लजि गति[2] सात्वगकी[3] उपटी हैं ।।
चाहै छिपावनकौं छलसौं, छबि सो उरमैं कहिबै बिछटी हैं ।
चंदसौ आंनन ढांपतही, नभ छूटिकैं चंदकला उछटी हैं ।। ३३८

अथ श्रीकृष्णकौ मोटायति

यथा—बैठे तहां गुरु लोग समाजमैं, सोहैं बनाव बनाय रणेसे ।
एक सषी तहां राधिकाकी, निकसी सुधि आयकैं देषि तकेसे ।।
ता छिन ही भाव सात्विगसौं, सो छिपांवन काज इलाजन केसे ।
छूटि छकेसे लषेसे लषे, उझकेसे बकेसे सकेसे जकेसे[4] ।। ३३९

अथ बिभ्रम हावलक्षन

दोहा—करत[5] औरके और ठां, भूषन बसन बनाव ।
पिय देषनकी चाहसौं, सो सुनि बिभ्रम - हाव ।। ३४०

अथ श्रीराधिकाकौ बिभ्रम-हाव

यथा—नेवर जराऊ मनि जेहरी बिसरि दोऊ ,
पाइ अरिबिंदनपैं बांदिनकौ धरिबौ ।
बाधे त्रिवलीन कसि हेरति हियेंपैं हार ,
हीय मनि किंकनीकी भासनिकौ भरिबौ ।
जावक रंगीले मृगसावक से नैंन इहि ,
भावक अनौषे हरि तन - मन हरिबौ ।
कांननिमैं मुरलीकी तांननि सुनतही सु ,
सीषी कहां कांननमैं काजरकौ करिबौ ।। ३४१

अथ श्रीकृष्णकौ बिभ्रम-हाव

यथा—एक समैं बृषभांनसुता, सु गई निज धांमहि नंदके नौती ।
बैठी हुती बनिकैं बहु बांनिकैं[6], जांनिक दीपकी ज्यौतिसौं जोती ।।

---

३३८. १ ख. भूषनिसौं । २ ख. लगी गति । ३ ख. ग. सात्विककी ।
३३९. ४ ख. पगेसे ।
३४०. ५ ख. करन ।
३४१. ६ बांनिक ।

एतेमैं देषि छके नंदनंदन, चाहि रहे तिन्हैं अंग जुन्हौती ।
बीरी दई कितहू बगराय, रहे भ्रम पाय चबाय चुनौती ॥ ३४२

अथ ललित-हावलक्षन

दोहा— देषनि बोलनि[1] चलनि हित, प्रगटत कांम-कलांनि[2] ।
मोदकलित अति रसबलित, ललित-हाव उर आंनि ॥ ३४३

अथ श्रीराधिकाकौं ललित-हाव

यथा— बारनके[3] भार लगि लागे लंक पार मिलि ,
चंदमुष - आंननपैं अलकैं सुहात हैं ।
कुंज - भौंन फिरत घिरत हेरि हंसकुल ,
सोहैं साथ सषियां समाज सरसात हैं ।
चीर जालदार ऐसैं राजत कसूंभैं रंग ,
ताकैं पार गहरी गुराई अधिकात हैं ।
आसपास चंचल चकोरनकी चौकी पर[4] ,
केऊ चारु चंद्रमांकी चौकी चली जात हैं ॥ ३४४

अथ श्रीकृष्णकौ ललित-हाव

यथा— मांथै मोरपछिकौ मुकटसो मयंक - छवि ,
दबि गए तिमर बियोग - दुष - दंद से ।
पीतांबर संध्या समैं अंबरको उपमांन ,
आसपास ग्वालगन उडगनबृंद से ।
फूले फूल गोपिनके[5] बदन कुमद - बन ,
लोचन - चकोरनके ताप मिटे मंद से ।
आनंदके कंद आजु सकल कला सहित ,
चंदमुषी देषि बृजचंद लसैं चंद से ॥ ३४५

अथ कुट्टमित-लक्षन[6]

दोहा— केलि कलहको केलिमैं, जहां केलि अधिकाय ।
सोई बरन्यौं कुट्टमित, हांव सुनौं कविराय ॥ ३४६

---

३४३. १ ख. बोलीन । २ ख. कामकलांन ।
३४४. ३ ख. बारनिके । ४ ख. चोकि परें ।
३४५. ५ ख. फूल फल गोपिनके । ६ ख. कुट्टमित लछिन ।
टी.—छन्द संख्या ३४६ क. प्रतिमें नहीं है ।

अथ श्रीराधिकाकौ कुट्टमित-हाव

यथा—पहिलैं[1] तजि मांन मनाय रही, परि पाय कितीक किये उपषांनैं ।
ऊतर हू न दियौ गहि मौंन, सषी न लषी दृग बोल न मांनैं ।।
आपुहि जाइ[2] मिली वृजराजहि, लाज़ तजी हियसौं हित ठांनैं ।
पेमके पंथकी बात सषी, सुनि पेमके पंथ चलैं सोई जांनैं ।। ३४७

अथ श्रीकृष्णकौ कुट्टमित हाव

यथा—हौं पचि हारी मनांवनकौं, न मनैं तऊ ज्यौं हठसौं सबही है ।
आपुही जाय मिले नंदनंदन, मांनकी बांन दसा न दई है ।।
याकौ अचंभौ कहा सजनी, जिनकी केती साषि[3]पुरांन कही है ।
मेरी सौं मोसौं न जात कहो, नैंनां नेह लगेनकी रीति नई है ।। ३४८

अथ बोधक-हावलक्षन

दोहा— सैंनहिसौं[4] समुझैं जहां, प्रकट करैं नहि प्रीति ।
रस-हुलास दूनौं बढै, यह बोधककी रीति ।। ३४९

अथ श्रीराधिकाकौ बोधक-हाव

यथा—वैठे हुते[5] गुरु-लोगनमैं, नंदनंदन अंग घनैं छबि छाये ।
राधिकाके ढिगकी अलि आय, निहारिकैं सैंन[6] कछू सरसाये ।।
बोलैं बिनां मुषसौ छविसौं, सो मिलापकौं अैसी दसा दरसाये ।
देषिकैं वा रुषहीकौं जबैं, फिरि फेरिकैं नैंन-सरोज[7] दिखाये ।। ३५०

अथ श्रीकृष्णकौ बोधक-हाव

यथा—मंदिर आपनैं आलिन साथ, सौ वैठी हुती अति रातिकी जागी ।
आय सषी तहां नायककी, घनैं नेहसौं अंगनसौं अनुरागी ।।
सैंनहीसौं रुप कुंज बतायकैं, राधिके ऊतर दैंनकौं लागी ।
आंननसौं कर लाय कछू, अलकैं फिरि फैली सुधांरन लागी ।। ३५१

---

३४७. १ ग. पहलें । २ ग. जाय ।

३४८. ३ ग. साष ।

३४९. ४ सैंननहीसौं ।

३५०. ५ ख. बैठी हुती । ग. बैठी हुंते । ६ ग. सैंन । ७ ग. मैंन सरोज ।

अथ बिलास-हाव-लक्षन

दोहा— नैंननि - बैंननि[1] सैन बिधि, उपजत हियें हुलास ।
जल - थल भूषित अंग रुचि, बरनौं तहां बिलास ।। ३५२

अथ श्रीराधिकाकौ बिलास-हाव

यथा— लाष-लाष भांति अभिलाषनि गुरावै सोहैं ,
हासो चंद्रहासैं गाढ़ बाढ़ अभिलाष्यौ है ।
अलकनि नेजा नैंन बांन पलकैं निषंग ,
भौंहनि कमांनैं कढ़ि चाप उर भाष्यौ है ।
साहससौ मंत्री त्यौं मुसाहिब बदन - चंद ,
सुभट उपंगनकैं ढंग भरि नाष्यौ है ।
लागत न लाग कैहूं सौतें अनमथ तेरौ ,
रूपगढ़ मानौं मनमथ सजि राष्यौ है ।। ३५३

अथ श्रीकृष्णकौ बिलास-हाव

यथा— देवनकी[2] नारि औ अदेवनि कुमारि तन ,
वारिबेकौं होत निरधार[3] छबि जेठी है ।
पन्नग बधूनके मनौरथ मिलायबेकौं[4] ,
जीति लीनी त्रिभुवन[5] उपमां इकैठी है ।
अैसी बिधि बरन असेष प्रभा अंगनकी[6] ,
बेदन बिरंचिहू बषांनत अनैठी हैं ।
रावरे निहारबै बिसेष बृज लोगंनमैं[7] ,
जोगनि ह्वै केतिक बियोगनि ह्वै बैठी है ।। ३५४

अथ बिछ्रति-हावलक्षन

दोहा— आभूषनकौ आदर न, होइ तहां मत आइ[8] ।
हाव इहै मनुहारिसौं, बिंछित कहौं बनाइ[9] ।। ३५५

---

३५२. १ ख. नेंननि खेंलननि ।
३५४. २ ख. दैवनिकी । ३ ख. निरधारि । ४ ख. मिलायबेकी । ५ क. त्रिभुव ।
६ ख. आंगनकी । ७ ख. ग. वृज लोगनिमें ।
३५५. ८ ख. मति आय । ९ ख. विधित हाव कहाय ।

अथ श्रीराधिकाकौ बिछिति-हाव

कवित्त– उज्जल[1] अनूंप आभा उझली परत चारु ,
चंद्रिकातैं चौगुनी सुधा - रसुधरी धरी ।
बोलनि हसनि मनमेलनि मिलन - बिधि[2] ,
छलनि छलावनिकैं भाय अति ही भरी ।
असें रांनी राधिकाके अमल उपंग ढंग[3] ,
उपमांन उपजी बिरंचि मतिहू हरी ।
कौन रूप थाहै सो अथाहै सो सुथाहै अंग ,
कबिन बृथाही यौंही चंदकी कथा करी ।। ३५६

अथ श्रीकृष्णकौ बिछिति-हाव

यथा–सार सबै जगके सुषदायक, लायक हैं जदुराय अकेले ।
मांनिक हीर तजे मुकताफल, गुंजके पुंजनकौं गल मेले ।।
पाइके सौरभ पाइबेकौं सो, सुगंधन ए बृजके रज भेले ।
लाष करोरनिको हते भूषन, ते सब मोर-पषौवनि पेले ।। ३५७

इति श्रीनेहतरंगे रावराजा श्रीबुद्धसिंघ सुरचते भाव हाव
निरूपण नांम नवमो तरंग

*

अथ अवर रस बर्ननं

दोहा– रस सिगार बरन्यौं सबै, अब बरनत रस ठौर ।
जा क्रमसौं आगालगू[4], कहि आए कबि और ।। ३५८

अथ हास्य-रसलक्षन

दोहा– लोचन बचननितैं कछू, उदै होत मन मोह ।
बुधिवंत[5] कबिबर सकल, कहत हास्यरस सोह ।। ३५९

अथ हास्य-रसभेद

दोहा– मंद हांस्य जानहुं प्रथम, अरु दूजौ कल-हांस्य ।
होत तीसरौ हास्य अति[6], कहि चौथौ परिहांस्य ।। ३६०

३५६. १ ख. उज्वल । २ ख. मिलनि विधि । ३ उपंग छन्द ।
३५८. ४ ख. आगेंलगू ।
३५९. ५ ग. बुद्धिवंत ।
३६०. ६ ख. हास्य तिहि । ग. हास्य रति ।

अथ मंद-हास्यलक्षन

दोहा– प्रफुलित लोचन होत कछु, दसन बसन मुलकाय ।
फरकत तनक कपोल जुग, मंद हांस्य सरसाय ।। ३६१

अथ श्रीराधिकाकौ मंद-हास्य

कवित्त– भोर पति संगते ससंक अंक 'जोर आली'[1] ,
बैठी सषियन साथ छबि साथ टूटी हैं ।
छूटैं कल अलकैं बिछूटैं नैंन स्यामताई ,
ओठ 'रदनं-छद'[2] सौ 'सबै जात लूटी हैं'[3] ।
ता छबि निहारि आंषें 'हसी अनहसी हसी'[4] ,
हसिबेकौं भई ताकी उपमां यौं जूटी हैं ।
रविके उदैतें मांनौं सब वे सरोजनीसी ,
षुली अधषुली एकैं[5] षुलैं एकै षूटी हैं ।। ३६२

अथ श्रीकृष्णकौ मंदहास्य

यथा–आजु लसैं हरि राधिका संग, निकाई सबै जगकी गहरैंसी ।
नांक बनावनकौं नथकौं, हसि हाथ दयौ गंहि केस हरैंसी ।।
ता छबिकौं लषिकै सषियां, मन रीझि रही छबिता बहरैंसी ।
चंदहूंके मुषतैं छहरैं, लहरैं मनु गंग षुली नहरैंसी ।। ३६३

अथ कल-हास्यलक्षन

दोहा– सुनियत धुंनि गंभीर कछु, प्रगटत दसन बिलास ।
प्रसन चित्त लषि होत है, वहै बरनि कल - हास ।। ३६४

अथ श्रीराधिकाकौ कल-हास्य

यथा–आजु लषी सषी साथसौं राधे, मैं साधैं सबैं रसकी तलकी है ।
छूटी लटी एक टूटी उरोज, सुमेरपै त्यौं असिता छलकी है ।।
सारें सराहत आपनहूं, तकिकैं मुसकी उपमां भलकी है ।
होत उदैकैं प्रभांन लौं चंद्रिका, चंदतैं 'छूटि कछू झलकी है'[6] ।। ३६५

---

३६२. १ ख. ग. जोर प्यारी । २ ख. रदन छब । ३ ख. ग. सबैं जल लूटी हैं ।
४ ख. हंसी अनहंसी लसी । ५ ख. येक ।

३६५. ६ ख. छूटि कछू उझली है ।

अथ श्रीकृष्णकौ कल-हास्य

यथा—एक समैं बलि राधिकानैं, कुबिजाकौ प्रसंग कह्यौ हितहूसैं ।
बोलि हसी मिलि संग सषी, कछु जाहरकै हरि संग ज हूसैं ।।
ता छिनकी उपमांइ 'निभाइ, रही'[1] मिलिकैं उन ग्रांननहूसैं ।
सोधि सबै बसुधाकी सुधा, उपटी मनु सोधि सुधाधरहूसैं ।। ३६६

अथ अति-हांसलक्षन

दोहा— निकसत हसत निसंक जह, होत सिथल सब अंग ।
सो अति - हास बषांनि तहं, बदन[2] सुगंध तरंग ।। ३६७

अथ श्रीराधिकाकौ अति हांस

यथा—एक समैं हरि राधिकासौं, समैं प्रात लसैं छबिता सरसी है ।
एक[3]सषी तहां सौतिकी आय, गुपांलसौं बोलकैं 'रोस गसी है'[4] ।।
असे प्रसंगनिकौं लषिकैं, मिलि सारी सकोचकौं देषि लसी है ।
एक सषी लषि रीझि हसी, एक आषैं हसी एक बोल हसी है ।। ३६८

अथ श्रीकृष्णकौ अति हास्य

यथा—आवत आजु लषे नंदनंदन, अंग-प्रभानि[5] धरैं जिषरी हैं[6] ।
ता छबि नैंक निहारि भई, न वै कौन बधू ब्रजकी फिकरी हैं ।।
ता षिन राधेसौं बार बडी लौं हसैं उपमां यह त्यौं[7] निषरी हैं ।
चंदकी वै अध-अंबरतें, छिति[8] छूटि मनौं किरनें बिषरी हैं[9] ।। ३६९

अथ परिहासलक्षन

दोहा— हसं सषीजन सकल जहं, रचि कोतिक करि रीति ।
ताहि कहत परिहांस सब, सुकबि सबै करि प्रीति ।। ३७०

अथ श्रीराधिकाकौ परिहांस्य

यथा—नंदनंदनकै एक नारिनैं होरीमैं काजर-रेष लिलार कसी है ।
ता दिसकौं ब्रजकी जुवती, सबही मिलिकैं हसिवेकौं लसी हैं ।।

---

३६६. १ ख. न भाई रही ।
३६७. २ ग. सुघन ।
३६८. ३ ख. इक । ४ ख. रोस गही है ।
३६९. ५ ख. प्रभाति । ६ ख. ग. जुखरी है । ७ ख. सौं । ८ ख. छुत । ९ ख छूट कछू फिरनें बिखरी हैं ।

सोहै प्रसंग या उपमतें, मन मेरेमैं आयके यों सरसी हैं ।
'च्यारचौंही'[1] ओरतें चंदमुषी, 'मुषचंदतें'[2] चंद्रिकासी बरसी हैं ।। ३७१

अथ श्रीकृष्णकौ परिहास

यथा–आजु मिली ब्रजनारि सबै, होरि षेलकौं नंदकें द्वार थटे ज्यौं ।
सारी सषीन सबै एक ह्वै, नंदनंद गहे सिमटी न हटे ज्यौं ।।
काहू गह्यौ कर काहू नै अंबर, अैसैं छुटे उपमांन लुटे ज्यौं ।
घेरि घटांनके बीचिहूसौं, चपलांनकी[3] चौकीसौं चंद छुटे ज्यौं ।। ३७२

अथ करुनांरसबर्नंन

दोहा– अपनें हितकौ अहित जहं, सुनत सोच चित होय ।
उपजत करुना रस तहां, बरनत कबिबर सोय ।। ३७३

अथ श्रीराधिकाकौ करुनांरस

यथा–'आये कहूंतें'[4] री आय कछू, जाकी बंसीकी गंसी हियेसु भरी हैं ।
ता पर त्यौं बस मंत्रसी हासी, निहारें परीतें परीतें परी हैं ।।
ता दिनतें सफरोकें सलूक, भई नफरी उपमां उघरी हैं ।
वें[5] छिन वें घरी देषि छके, 'सु अजौं लग[6] वें' छिन 'वेंई घरी हैं[7] ।। ३७४

अथ श्रीकृष्णकौ करुनांरस

यथा–जा दिनतें लगे नैंन तिहारे, सो ता दिनतैं वे बिके तन त्यौं हैं ।
काहूकौं 'लांच दै[8] काहूकौं सांच दै, काहूकौं आंच दै जाच दै ज्यौं हैं ।।
अंबु ज्यौं ओछै परी सफरी, नफरी भये त्यौं अकुलातसे यौं हैं ।
आजु कछू फिरि काल्हि कछू, परसौंतें कछू तरसौंतें कछू हैं ।। ३७५

अथ रौद्ररसलक्षन

दोहा– उग्र देह अति कोपमय, रक्तबर्न सब[9] अंग ।
ताहि रौद्ररस कहत हैं, सब कबि पाय[10] प्रसंग ।। ३७६

---

३७१. १ ख. च्यारहो । २ ख. मुखचंद्रि ते ।
३७२. ३ ग. चपलानकी ।
३७४. ४ ख. आयेहू कहूंते । ५ ख. वे । ६ ख. सु अजु लगि । ७ ख. वेई घरी हैं ।
३७५. ८ ख. नांचदें ।
३७५. ख. ता दिनतें फिरि आजु कछु फिरि काल्हि कछु परसों ते कछू हैं
३७६. ९ ख. रक्तबरन । १० ख. पाइ ।

अथ श्रीराधिकाकौ रौद्ररस

यथा—वामैं कलंक इहैं निकलंक, हैं निसिद्यौस निसा इह जो है ।
अंग घटै वह बाढै इहै, रंग सोहत है अलंकें अवरोहै ।।
सीचत है बिषबेली वहे, इहै नंदके नंदनकौ मन मोहै ।
चंदकौं क्यौं सम दीजे भटू, मुषचंद तौ चंदतें 'सौगुनौं सोहै'[1] ।। ३७७

अथ श्रीकृष्णकौ रौद्ररस

यथा—न्हांन सबै जमुंनां जलकौं, ब्रजके नर नारी हियें उमगे हैं ।
राधिका-रूप रहे लखि रीझि, भए[2] अभिलाष अनेक रंगे हैं ।।
ज्यौं गुरु लोग सकोचन सोच, सरोजनसे उपमांन जगे हैं ।
औसें लगे दहूं ओरतें नैंन, सो लाजके 'नां हीय लाज लगे हैं'[3] ।। ३७८

अथ बीररसलक्षन

दोहा—गौरषख गंभीर तन, अधिक उछाह उदार ।
ताहि बषांनहु[4] बीररस, कबिबर करि निरधार ।। ३७९

अथ श्रीराधिकाकौ बीररस

यथा—तारे सुभट्टन मोतिन - माल, बिचित्रत चीर धुजा फहराई ।
दीपति देह तुरंग लसें, गजराजन साजत गौंन निकाई ।।
हासी षुलें चंद्रहासैं लसें, बर बंब चकोर अवाज सुनाई ।
यौं ब्रजचंद रिझांवनकौं, चमू चंद ज्यौं चंदमुषी सजि आई ।। ३८०

अथ श्रीकृष्णकौ बीररस

यथा—मोतिनहार नछित्रन फैलि, बियोगनि त्यौं तमकौं करसे हैं ।
सोहत पीतसे अंबरसौं, लियें अंबर सांझ समै दरसैं हैं ।।
ग्वालनिबृंद कमोदनिसे, 'षुलि आवत'[5] अंगनिसौं सरसैं हैं ।
चंदमुषी तेरे नैंन-चकोरनि[6], चंद मनौं बृजचंद लसैं हैं ।। ३८१

---

३७७. १ ख. चोगुनों सो हैं । ग. चौगुनो सो है ।

३७८. २ ख. भई । ३ ख. नाहीं इलाज लगे हैं ।

३७९. ४ ख. बखांनिहुँ ।

३८१. ५ ख. लिख आवत । ६ ख. ग. चकोर पे :

अथ भयरसलक्षन

दोहा– स्यामबरन दुति देहकी, अति भयमय दरसात ।
देषत सुनत संकात मन[1], सो भयरस सरसात । ३८२

अथ श्रीराधिकाकौ भयरस

यथा– नांही बगुपांति यह कौडावलि देषियत ,
गरजत नांही बाजै सांकरनि[2] झेले हैं ।
छूटि जटा चंचला भसम धूम अंगलेप ,
मोर - सोर - हांक मिलि कोइलन भेले हैं ।
अंबर धनष नील बचन झरत बूंद ,
बिरह - परब घेरैं चातकनि चेले हैं ।
चहू ओर भेलें ए समीर झकझोले[3] आली ,
पावस न भेले ए मलंगनके मेले हैं ।। ३८३

अथ श्रीकृष्णकौ भयरस

यथा– उमडे अडारे[4] घन कारे ते अफारे भय -
भारे अंधियारे धुरवारन सुजातकी ।
चातक अलापैं पिक किन्नर झिंगारैं सुर ,
झिंगरन झांई मिलि मोरनि जमातकी ।
गरजैं घटाकी छबि छूटिनि छटाकी सुधि ,
आवत अटाकी दुति भूलत सुगातकी ।
ज्यौं-ज्यौं सुधि जात जात छिन-छिन राति जात ,
एक एक राति जात लाष-लाष रातकी ।। ३८४

अथ बिभत्सरसलक्षन

दोहा– नीलबरन विभत्सरस, अति निंदामय देह ।
उदासीन चित होत है, देषत सुनत जु जेह ।। ३८५

---

३८२. १ ख. ग. सुकात मन ।
३८३. २ ख. सांकरिनि । ३ ख. इकडेलें ।
३८४. ४ ग. आडारे ।

अथ श्रीराधिकाकौ बिभत्सरस

यथा—पावसकी मधि रैंनि समैं, पग-पायल पन्नगकी उर झागो ।
अंबर पंक भरे गये भीजि, तऊ जियमैं कछु संक न जागी[1] ।।
होत इहीं बिधितें जियबौ, चित चाय बिधाता करी अनुरागी ।
जांनैंगी जेही जे जिय आंनैंगी, जे अंषियां अंषियानसौं लागी ।। ३८६

अथ श्रीकृष्णकौ बिभत्सरस

यथा—भादवकी भयभारी निसा, न गिनी जलधार बिहार सनौषी ।
बेलनि ज्यौं लपटैं घनैं पन्नग, त्यौं मग पिंडुरी[2] कंटक झोषी ।।
सारे सबै ब्रजलोगनि[3] हाथ, तिहारे मिलापकैं कारन सोषो[4] ।
कीजे कहा कहिये जु कहा, लगो आंषिनकी यह रीति अनौषी ।। ३८७

अथ अद्भुत रस-लक्षन

दोहा— जाकें देषत सुनत ह्वोय, होत अचंभौ आंनि ।
पीतबरन दुति अंगसौं, अद्भुतरसहि बषांनि ।। ३८८

अथ श्रीराधिकाको अद्भुतरस

यथा—देवीकै देहुरै पूजत आजु, लषे बृजचंद सुधा सरसाती ।
रीझि मिली अंषियां अंषियां, उरझाती लजाती न औरौं लषाती ।।
यौं दहुं ओरनतें सुधि कुंजकी, असैं चली मिलिबेकौं[5] उडाती ।
चारेतें चौंकि[6] त्रिषांनकैं[7] त्रास, पसारिकें पंष[8] जुराफ ज्यौं जाती ।। ३८९

अथ श्रीकृष्णको अद्भुत रस

यथा—आजु मिले जमनां-तटपैं, नंदनंदन ज्यौं व्रषभानकिसोरी ।
धाय मिली अंषियां अंषियां, सषियांनकैं साथ चपैं करि चौरी ।।
ज्यौं अभिलाषनतें यक[9] साथ, ह्वै सैंन[10] षुली मिलि कुंजकी वोरी[11] ।
मंजन हेत चली तकि ताल, मनौं उडि षंजनकी जुग जोरी ।। ३९०

---

३८६. १ ख. संक न लागी ।

३८७. २ ख. प्युंडुरी । ३ ख. वृजलोकनि । ४ ग. सौंषी ।

३८९. ५ ख. मिलिबेकूं । ६ ख. ओरेतें चोकि । ७ ग. त्रिषानकैं । ८ ख. पंज ।

३९०. ९ ख. ईक । १० ख. हुसैं न । ११ ख. कुंजकी चोरी ।

अथ समरसलक्षन

दोहा— सबतैं चित्त उदास ह्वै[1], एक मांझ ह्वै लीन ।
तासौं समरस कहत हैं, कबि पंडित परबीन[2] ।। ३६१

अथ श्रीराधिकाकौ समरस

यथा—बोलै न डोलै न षेलै हसै, बनि बैठी[3] लिये अंग-अंग उजेरैं ।
पांन न षाय न पानी पियैं, तजे भूषन बास बिलास घनेरैं ।।
जोगसौं साधि समाधिसी लाय[4], रही सु तौ आवति है मन मेरैं ।
हेरैं बिनां हरिकैं उनकैं, रह्यौ हेरिबौ औरनकौं हरि हेरैं ।। ३६२

अथ श्रीकृष्णकौ समरस

यथा—चित्रके से लिषे[5] मित्र गवालनि, बालनि छाडिकैं भौन बसेरैं ।
भूले[6] सबै सुधि षांनकी पांनकी, भूषन भाय बिसारे घनेरैं ।।
ग्रैसैं रहे उघरीसी दसा, उघरी कैधौ जोगदसाकैं उजेरैं ।
हेरी हुती तुव आवत जा दिन, ता दिनतैं हरि ग्रौंर न हेरैं ।। ३६३

इति श्रीकृष्णकौ समरस

इति श्रीनेहतरंगे राउराजा श्रीबुद्धसिंह सुरचते रसनिरूपणं नांम दसमो तरंग

*

अथ च्यारिवृत्ति कबित्तकी बर्ननं

दोहा— प्रथम वृत्ति कौसिकि[7] कहौं, बहुरि भारती देषि ।
आरभटी तीजी कहौं[8], चौथी सात्विकि[9] लेषि ।। ३६४

अथ कौसिकीलक्षन

दोहा— करुनां हास्य सिंगार रस, अक्षिर[10] सरस बषांनि ।
सुंदर भाव समेत मिलि[12], वृत्ति कौसिकी जांनि ।। ३६५

यथा—रैंनिकी लागी कपोलनि पीक, हिये अनुरागु[13] उतै उघरचौ है ।
टूटि रहें उर हार लसैं, सु सुहागसौं सौतिन चाढ भरचौ है ।।

३६१. १ ख. है । २ ख. प्रवीन ।
३६२. ३ ख. वाने बैठी । ४ ख. समाधि मीलाय ।
३६३. ५ ख. लिखि । ६ ख. भूलि ।
३६४. ७ ख. कोसिक । ८ ख. कहूं । ग. कहुं । ९ ख. सात्विक ।
३६५. १० ख. अक्षर । ११ ख. समेति मिलि ।
३६६. १२ ख. अनुरागु ।

तापर यौं सिर सोभा समाजसौं, उप्पमता यह गाढ करचौ हैं ।
प्रीति उदगलकौं ब्रजचंदसौं, ज्यौं सिर मंगल छत्र धरचौ है ।। ३९६

अथ भारतीलक्षन

दोहा– हास्य बीर करुनांरसहि, रचि बर-अक्षर प्रीति ।
कहत सुकबि कबिता-निपुन, यहै भारती रीति ।। ३९७

यथा–आजु लसैं बनितांनकैं[1] बीचि, रही अंग-अंगन जोबन जोरैं ।
रातिके सो रदनछदकौं, अलकांनितैं[2] ढांपति है चषचोरैं ।।
ता छिनकी छबिता छकिकैं, यह उप्पमता मन औसैं निहोरैं ।
जैसे सुधाधरसौं सिमटाय, अमी उपटात मनौं इक बोरैं[3] ।। ३९८

अथ आरभटीलक्षन

दोहा– आरभटी तीजी कहौं, बृत्ति जमक सरसाय ।
भय रु रौद्र बिभत्स रस, बरनत सब यहि[4] भाय ।। ३९९

यथा–गाजकैं सज्जल कज्जलसे, घन छूटि मदज्जलसे झर जागी ।
मोरके सोर करैं चहुं ओर, सौ चंचला ज्यौं चलि षाग उनागी[5] ।।
कैसैं करौं हौ रहौं न मिलैं, बिन ए अंषियां जिनसौं अनुरागी ।
तू सुनि री बलि या न भली, बली वैरनि ज्यौं वरिषा[6] रितु[7] लागी ।। ४००

अथ सात्विकीलक्षन

दोहा– वीर रौद्र अद्भुत समह, होत जु ए रस आंनि ।
बृत्ति सात्विकी[8] कहत हैं, कबिता मतकौं जांनि ।। ४०१

यथा–रैंनि दिनां अभिलाषभरी, नहि रोकी रुकी पलकी पंषियांसौं ।
वाहरिकी घरकी सब त्रास, तजी कुल लाज लगी लषियांसौं[9] ।।
देषें बिनां जिय लेषें नहीं, अधिकी इनि रीति गही झषियांसौं ।
तेरो सौं ए नहीं मेरी सगो, एरी नौज लगौ अंषियां अंषियांसौं ।। ४०२

इति बृत्ति

---

३९८. १ ख. वनितानिकैं । २ ख. अलिकानितें । ३ ख. मनों इक चोरे ।
३९९. ४ ख. ईहि ।
४००. ५ ख. ज्यों पावन पागी । ग. उन आगी । ६ ख. बरखा । ७ ख. रित ।
४०१. ८ ख. व्रति सात्विकी
४०२. ९ ग. अषियांसौं ।

अथ अनरस कवित्तबर्नंनं

दोहा– प्रतनोक नीरस बिरस, और सुनहु दुसंधांन ।
पातर-दुष्ट कबित्त जिनि, बरनहुं सकवि सुजांन ।। ४०३

अथ प्रतिनीकलक्षन

दोहा– जहां सिंगार बिभत्स भय, बीरहि कहैं बषांनि ।
करुनां अरु रौद्रहि तहां, प्रतिनीक रस जांनि ।। ४०४

यथा– बात चलावत हौ तुम ज्यौं-ज्यौं, वै बातनि ही मधि मांन मलै हैं[1] ।
जौं[2] छलसौं छल्यौ चाहौ तौ वैऊ, महाछलकैं छलकोरि छलैं हैं ।।
जौं चित आंनत हौ अनतैं, कहुं जाय एतौ वैऊ आय रलैं हैं ।
ज्यौं-ज्यौं निहारत हौं बृजचंदकौं, चौगुनी त्यौं-त्यौं चवाई चलैं हैं ।।४०५

अथ नीरसलक्षन

दोहा– मिलि मुहुही दंपति रहैं, दिन प्रति औरै रीति ।
कपट रहै लपटाय यह, नीरस रसकी प्रीति ।। ४०६

यथा– नेह समुद्रकी थाह अथागन, लेषौ चहै सु तौ क्यौं निबहै है ।
पौंनके पायन दौरचौं चहै, चित चौरचौं चहै सु वो कैसें लहै है ।।
नंदके नंदनकौ बसि कीबौ चहै, सु तौ बावरी बांनि गहै है[3] ।
असें नहीं करिबौ कबहू[4], मुष औरै कहै मन औरै कहै है ।। ४०७

अथ बिरस-रसलक्षन

दोहा– सोग मांझ बरनें जहां, भोग बिबधि बिधि बांनि ।
ताहि कहत हैं बिरसरस, सब कबिराज बषांनि ।। ४०८

यथा– नंदके नंदनसौं वहै बात, चहै सु तौ बावरी क्यौं बनि आवै ।
वै तो रंगे रंग राधिकांकैं, जिनकौं अब दूसरी[5] कौंन सुहावै ।।
कीजे बिचारनके उपचार, बृथा है[6] बिथा तौहि को समझावै ।
काहेकौं एती करै मनमैं, अली पीछैं परैं कछु हांथ न आवै ।। ४०९

---

४०५. १ ख. भले हैं। २ ख. ज्यों।
४०७. ३ ख. ग. बावरि बन गहै हैं। ४ ग. कबहूं।
४०९. ५ ख. अवर दूसरी। ६ ख. ब्रथा है। ग. बृथा है।

अथ दुसंधांनलक्षन

दोहा– इकुं[1] अनकूल[2] बषांनिए, नीकी भांति पिछांनि ।
प्रतिकूल दूजौ करैं, ताकैं पोछें आंनि ॥ ४१०

यथा–दीजे दही, कहौ काहे कौ दीजे जू ? दान हमारौ, न मोल नक्यौ है ।
मोल कहा है ? तो लेहु दही, नहि देहु तौ, देह न ऐसें बक्यौं है ॥
जैहौ तौ रोकि हैं, को, हम रोकि हैं, तौही रुकी न रुको तरक्यौ है ।
तौही तिहारौ बिक्यौ जु बिक्यौ,
तौ बिक्यौ तौ बिक्यौ न बिक्यौ न बिक्यौ है ॥ ४११

अथ पातर दुष्टलक्षन

दोहा– पुष्ट और ही कीजिए, होइ औरकी चाह[3] ।
तासौं पातर दुष्ट सब, कहि बरनत कबिनाह[4] ॥ ४१२

यथा– सेहरकें जु तजे हरकें, मिलि जे बलि ये हरिकैं जिय जी है ।
पेंनै रसांलके पल्लवसें, लषि चंपककी कलिकांन जकी है ॥
बिद्रमहार बहारन बिंब, ठहा रिसकै नहि एक रती है ।
प्रातके पंकज पेलि प्रभा, पग सोहत जावक[5] पावकसी है ॥ ४१३

इति श्रीनेहतरंगे राव राजा श्रीबुद्धसिंघ सुरचते चतुर विधि कबित्त बृत्ति पंचबिधि अनरस कबित्त निरूपणं नांम एकादशौ तरंग ॥ ११

*

अथ छह[6] रितुबर्नन

दोहा– रितु बसंत ग्रीषम अवर, पावस सरद सुजांनि[7] ।
हिम रु[8] सिसरि संजुत सरस, छ रितु लेहु पहचांनि ॥ ४१४

अथ बसंतबर्नन

दोहा– करत गुंज मिलि पुंज अति[9], लपटैं लेत सुगंध ।
ठौर ठौर झौरंत झपत, भौंर-झौंर मद अंध ॥ ४१५

---

४१०. १ ख. इक । २ ख. अनुकूल ।
४१२. ३ ख. ओर ही चाह । ४ ख. कविताह ।
४१३. ५ ख. सोहन जांवक ।
४१४. ६ ख. छहु । ७ ग. सुजांण । ८ ग. हिमरति ।
४१५. ९ ख. मिलि पुंज अलि ।

यथा– फूली[1] लता नव पल्लवकी, सो जटा षुलि केसरि ज्यौं छबि छायौ ।
गुंजन भौंरनकी चहुधां, कुसमाद पलासनकैं नष लायौ ।।
सीतल-मंद-सुगंध समीर, तिही भय त्रासन आगम धायौ ।
यौं बृजपैं[2] बृजराज बिनां, रितुराज मनौं मृगराज ह्वै आयौ ।। ४१६

अथ ग्रीषमबर्नन

दोहा– परि अताप किरनैं प्रकट, दाधे तरु सरुजात ।
जग देषत ज्वाला लगै, जोगी जेठ जमात ।। ४१७

यथा– धूप तपै तपताप पंचागि[3], दवागिनि सो भगवां रंग सोहै ।
लेप बिभूति किये अंग ज्यौं, मृगकी त्रिसनां तकि त्यौं अवरोहै ।।
फूलि रहे छकि नैंन सरोज से, उप्पमता लषिकैं मन मोहैं ।
यौं किरनैं रहि छूटि छटानही, ग्रीषम जोगी जटांधर सोहैं ।। ४१८

अथ बरषाबर्नन

दोहा– भसम धूम अंबर घटा, छटा धनष राकेस ।
जटाजूट षुलि चंचला, घन महेस आदेस ।। ४१९

यथा–छूटि झरैं धुरवा गति ज्यौं[4], गंगधार हजारनकी सरषा है[5] ।
बादर नांहि बिभूति लसैं, नांद कोकिल कीजतिकी[6] करषा है ।।
चंचला सोहै जटा षुलिकैं, भाल चंदसो चंद्रिकाकी निरषा है ।
उप्पमताई सौं यौं परसैं, दरसैं महादेव किधौं बरषा है ।। ४२०

अथ सरदबर्नन

दोहा– बदन - चंद षुलि चंद्रिका, दृग - सरोज सम आज ।
आई है करि आतुरा[7], सरद पातुरा साज ।। ४२१

यथा– चंचल चकोर चहु वोर जोर हंसनकी ,
चंदमुष चांदिनोसी छूटि छबि छाई है ।

---

४१६. १ क. फुली । २ ख. या व्रजमें ।

४१८. ३ ख. पंचाग्नि ।

४२०. ४ ख. धुरेंवा गति त्यों । ५ ख. वरखा है । ग. बरषा है । ६ ख. कूजतकी ।

४२१. ७ ख. आतुरी ।

मोतीहार मिलिकैं सुकल प[पं]छि मांनसर ,
षुले से[1] सरोजन दृगन दुति पाई है ।
सुधा बरसांन देषैं देत बरदांन यौं ,
परसपर उपमा प्रवाह परसाई है ।
अंग-अंग साजसौं सुदेस छबि आजु सोहै ,
सारदा ज्यौं सरद समाज सजि आई है ॥ ४२२

अथ हेमंतबर्नन

दोहा— सब जगमैं सब जननकौं[2], सुषदायक सुभनंत ।
तेल तूल तांबूल तप, तापन तपन अनंत ॥ ४२३

यथा—बाढ़ी निसा बहरें छहरें, ससि छूटि कलारस अमृत भीनौं ।
सीत चहू दिस फैलि महा, तरु पंछी लता कुमिल्हात अधीनौं ॥
त्यौं उतरात समीर झकोर, लगै जलहू थिरतापन लीनौं ।
ज्यों जियसो तियसो पियसौं, जग मांनौं हिमंत जुराफसौ कीनौ ॥ ४२४

अथ सिसरिबर्नन

दोहा— मत्त मकरधुजमैं किये, नरनारी सब जीति ।
बिटपबृंद दाहे सबैं[3], महा सिसरिकैं[4] सीति ॥ ४२५

यथा— आषिन झरैंसी धरैं हारन प्रमोद मन ,
रैंनिकौं बढायें दिन घटै अंग अैठी है ।
चांदिनी अमल चंद चंदन अलेप तजैं ,
सजैं च्यारचौं और करि अनल थकैठी है[5] ।
लाज बृज लंगर त्यौं[6] षूटिकैं बिछूटी रहै ,
आक-बाक बकति कहा धौं जिय पैठी है ।
साजिकैं समाज सौभा सरस सिसरि आजु ,
जोगनीसी बावरी बियोंगिनी ह्वै बैठी है ॥ ४२६

---

४२२. १ ग. षुल से ।

४२३. २ ग. सब जनकौं ।

४२५. ३ ख. सब है । ग. दहि सवै । ४ ख. सिसरकैं ।

४२६. ५ ख. अनल ध्कैंठी है । ग. अनल यकैठी है । ६ ख. व्रजरंगर ज्यों ।

अथ पिंगल मतबर्नन

दोहा-- बहुत छंद कृत नागके, पिंगल मत[1] बिसतारि ।
बिदत छंद कछु कहत हौं[2], सो नीकै उर धारि ॥ ४२७

अथ गनबर्नन

यथा-- त्रिगुरु मगन महि देवता श्रवत सिरी ,
त्रिलघु नगन नाक बुद्धि बकसैं नृमल ।
आदि गुरु भगन मयंक बिसतारैं जस ,
आदि लघु यगन उदिक सुष दैं सकल ।
मधि गुरु जगन दिवाकर उपावैं रोग ,
मधि लघु रगन हुतासन हतैं प्रबल ।
अंति गुरु सगन बयारि सो बहावैं बहु ,
अंति लघु तगन गगन करैं सुं निफल ॥ ४२८

अथ दोहालक्षन

दोहा-- तेरै मत्ता[3] प्रथम ही, पुनि[4] अग्यारह जोइ ।
तेरै ग्यारह बहुरि करि, दोहा लक्षन होइ ॥ ४२९

दोहा-- हारि जात बरनत सुजस, डारि जात जलजात ।
पारिजात तो पर अलो, वारि जात निज गात ॥ ४३०

अथ गजिंद्रगतिलक्षन

दोहा-- सात भगन गुरु होइ जह[5], रचौ मात बत्तीस ।
तेइस अक्षर चरनके, सो गजिंद्रगति दीस ॥ ४३१

यथा--जात चलि मिलि संग अली सु, मिली मग गोकुल मांझ सवारी ।
लाग्यौ सौ लंक रहे लगि केस, करी बिधि चंद्रमा चोरि निबारी[6] ॥

---

४२७. १ ख. मंगल मत । २ ख. कहत हुँ ।

४२८. ख. प्रतिमें नहीं है ।

४२९. ३ ख. तेरे सत्ता । ४ ख. पुन ।

४३१. ५ ख. जहँ ।

४३२. ६ ख. चोरि नवारी ।

चीर हरैं लहगा लसैं लाहकैं[1], छूटि रही अलकैं न सुधारी ।
चाय चढी[2] चित आय चढी, अंषियांनि गडी बडी आंषिनवारी ।। ४३२

अथ दुमिलालक्षन

दोहा– सगन आठ कीजे जहां, चौइस बरन बनात ।
मात बतीसह चरनकी, दुमिला छंद कहात ।। ४३३

यथा–इहिं रूप लषी वह आवत ही, मनमोहनीसी पल पांषनिमैं ।
दरसैं दुतिकौं परसैं मृगनी, सरसैं सफरीनकी साषनिमैं ।।
जबतैं बिछुरी दृगतारनितैं[3], पुतरी घनस्यांमके ताषनिमैं ।
तबहीतैं षुभी पियके हियमैं, वन आंषिनकी छबि[4] आंषिनमैं ।। ४३४

अथ प्रेमसवया लक्षन

दोहा– करौ मात इकतीस पद, च्यारि चरन जुत प्रीति ।
षोड़स पदरा पर बिरति, प्रेमसबैया रीति ।। ४३५

यथा–चंपक रंभ अंब द्रुम मौरे, चहुं दिसि कोकिल कूक सु लग्गी[5] ।
गुन गालिब गुलाब केतक पर, कमलनि अलिकुल माल बिलग्गी ।।
अमल चंद वै किरनि चंदकी, त्रिबिधि समीर जुन्हाई जग्गी ।
यह जीवन लग्गें एते पर लग्गै, अंगिग बांव फिरि बग्गी ।। ४३६

अथ मनहरनलक्षन

दोहा– षोड़स पंद्रह पर बिरति, चरन अंक यकतीस[6] ।
छंद नांम मनहरन हैं, गुरु इक अंतक बीस ।। ४३७

कवित्त– चूक्यौ फिरै चंद लषि चंपक विभूक्यौ फिरै,
षंजन षिसात फिरै समता न साधेकी ।
कुंदन-कलांनि वारि[7] डारौं चंचलानि सोहै,
कमला कलासी अंगरंग चकचांधेकी[8] ।

---

४३२. १ ख. लायके । २ ख. ग. पाय चढ़ी ।
४३४. ३ ख. ग. दिगतारनमैं । ४ ख. उन आंखिनकी छबि ।
४३६. ५ ख. सू लगी । ग. सु लगी ।
४३७. ६ ख. इकतीस ।
४३८. ७ ख. कुंदन कलानि वारि । ८ क. चक चंधिकी ।

बृंदाबनचंद चित लोचन अधार वै ,
अराधैं निस-द्यौंस भायक यौंक समाधिकी ।
बिरहके दाधे इन नैंननि हमारेकी जौ ,
बाधेकौं हरौ न तौ हजार सौंह राधेकी ॥ ४३८

अथ कड़षालक्षन

दोहा– दस दस संतरै पर[1] बिरति, सप्ततीस सब मात ।
कहत भूलना याहि कबि, कोऊं कड़षा[2] गात ॥ ४३९

यथा– चंद्रमुख चंद्रिका अंग चहुं वोर षुलि ,
चषनि चिति चाहि चक्कोर मंडी ।
भाल ससि दोजि त्रिय नैंन भौंहैं ,
चढी बढी आरकंत्त दुति[3] अषंडी ।
बिष्णु ब्रह्मा चरन सरन संकर सदा ,
सिद्धिदांयनि महा कर उदंडी ।
नमो मत्त - मात्तंग[4] कुंभ कुच - ललिता ,
प्रगट एक अद्वैत जागर्त्त[5] चंडी ॥ ४४०

अथ छप्पैलक्षिन

दोहा– ग्यारह तेरह मातके, च्यारि चरन सुध हांनि ।
पंद्रह तेरह चरन जुग, छप्पै छंद सुजांनि ॥ ४४१

यथा– झलकि चंद सिर गंग[6], बलित भू[ष]न भयंग अंग[7] ।
मिलित रुंड उर माल अंग अरधंग गवरि संग ॥
द्दग निमत्त[8] उनमत्त-मत्त भुव भंग भंग रुष ।
मिलन मत्त बिबिभ्रंग संग अवली सभाल मुष ॥
नरदेव देव बंदत चरन, अंबर बाघंबर अटल ।
त्रिहुलोकनांथ कैलासपति, जय जय जय जोगी जटल ॥ ४४२

इति श्रीनेहतरंगे रावराजा श्रीबुद्धसिंह सुरचते पिंगल
मत छंद निरूपण नांम त्रियदसो[9] तरंग

*

४३९. १ ख. तेरे पर । २ ग. षडषा ।
४४०. ३ ख. ग. आरक्त दृग दुति ४ ख. मनोमत्त मातंग । ५ ग. जागतें ।
४४२. ६ ख. सिर गिर गंग । ७ ख. भूषन भुयंग अंग । ८ ग. निमित्त ।
९ ख. त्रियोदशो । ग त्रिदुसो ।

अथ अलंकारबर्नंनं

दोहा– नवरस बरनैं बहुरि कछु, पिंगल छंद बताय ।
अलंकार अब कहत हौं, बर्नंन अवसर पाय ।। ४४३

छंद मुत्तीयदांम

कहौं लछिनं लछिलंकृत नांम ।
सुनौं चित दै छंद मुत्तीयदांम ।।
ब्रना अबरन्न रु बाचकधर्म्म ।
लुपै लुपता चहुं पूरन कर्म्म[1] ।। ४४४
अलंकृत पूरन उप्पम[2] मांनि ।
तिया मुषचंदसौं[3] उज्जल जांनि ।।
इकै द्वय[4] तीनि बिनां निरधार ।
लहौं उपमां इम लुप्त बिचार ।। ४४५
तिया सम[5] सुंदर को जग जानि ।
सु तौ नव हेमलता सी बषांनि ।।
सुनौ संजनी पिक बैंन पिछांनि ।
वहै मृगनैंनि बसै चित आंनि ।। ४४६
अनन्वय नांम सुलक्षिन[6] लेषि ।
तिया मुष जैसौं तिया मुष देषि ।।
कहौं उपमांनु यहै उपमेय ।
तहां परसप्पर उप्पम देय ।। ४४७
लसैं दृगसे[7] कंज कंजसे नैंन ।
सुबैंन सुधासे सुधा - सम बैंन ।।

---

४४४. १ ख. कर्म ।
४४५. २ ख. उपमा । ३ ख. सुषचंद । ४ ख. ग. दुय ।
४४६. ५ ख. सब । ग. सांम ।
४४७. ६ ख. सुलक्षन ।
४४८. ७ ख. द्रगसे ।

प्रतीप कहौं बिधि पांच बनाइ ।
इहीं क्रम लच्छि रु[1] लच्छिन पाइ ॥ ४४८

प्रतीप सु उप्पम ह्वै उपमेय ।
भयौ ससि आंननसौ[2] तुव सेय ॥
निरादर उप्पमतें उपमेय ।
कहा अब बैंननि बीन न लेय ॥ ४४९

जाहां[3] उपमेयतें उप्पम हींन ।
तकैं तन तो[4] भइ दांमनि दीन ॥
कछू उपमा समता सम नांहि ।
तिया गजसी गति क्यौं कहि जाहि ॥ ४५०

बृथा उपमां उपमेय सु सार ।
नहीं पिककैं सुध बैंन उचार ॥
इसी बिधि पंच प्रतीप बताय ।
कहैं कबिराज उकत्ति[5] उपाय ॥ ४५१

अलंकृत रूपक द्वै बिधि जांनि ।
समांन इकै नहि दूजे समांन ॥
समांन सुलक्षिन जांनि समांन ।
तिया कुच सुंदर संभु प्रमांन[6] ॥ ४५२

समांन न और समांन न जोइ ।
कलंक बिनां मुषचंद न होइ ॥
प्रणाम सुंकाज करै उपमांन ।
लषै दृग - पंकजतें तिय जांन ॥ ४५३

---

४४८. १ ख. ग. लक्षरु ।

४४९. २ ख. आंन प्रसौ ।

४५०. ३ ख. ग. जहां । ४ ख. तनु तों ।

४५१. ५ ख. उकति ।

४५२. ६ यह पंक्ति 'ग' प्रतिमें तृतीय चरण पर है ।

इकै बहु मानैं उलेष सुचाल ।
कहैं हरि संत रु दुज्जन काल ॥
इकै बहुतें गुन दूजौ उलेष ।
तिया रतिरूप रु जोति[1] निसेस ॥ ४५४

सुनौं जु सुमर्ण अलंकृत भाय ।
लषै उपमां उपमेय सु पाय ॥
मिली वह औधि कही हुती[2] तीज ।
लषी संग राधे लषैं घन बीज ॥ ४५५

भ्रमैं तहं ग्यांनहु सो भ्रम होइ ।
इहै[3] मुष चंद चकोर न कोइ ॥
लषौ जु सदेहु संदेहु ही साज ।
किधौं मुष - कंज किधौं निसराज ॥ ४५६

दुरैं ध्रम सुद्ध[4] अपुन्हति जांनि ।
जलद्दन मांते मतंग बषांनि ॥
अपुन्हति हेत[5] दुरै उपमेय ।
न मोहन ए छबि कांमहि देय ॥ ४५७

सुप्रज सुता गुण और ही रुष्ष[6] ।
सुधाकर नांहि सुधाकर मुष्ष ॥
अपुन्हति भ्रंम सुभ्रमं न हौंन ।
नहीं गजगौंन न हंसहि गौंन ॥ ४५८

अपुंन्हति छेकसु जुक्ति दुराव[7] ।
कपोलनि पीक नहीं रदघाव ॥

---

४५४. १ ग. जौति ।

४५५. २ ग. हुंती ।

४५६. ३ ख. रहै ।

४५७. ४ ख. धर्म सुद्ध । ५ ख. केत ।

४५८. ६ ख. रुख्य ।

४५९. ७ ख. सुराव ।

अपुंन्हति कै तव ह्वै मिस[1] भांति ।
हसैं मुषकांति करै ससिकांति ।। ४५९
इहै उतप्रेंछ जु संसय सांच ।
गनौं इक हेत इकै फल बांच[2] ।।
न ती सम[3] चाल धरै गज धूरि ।
मनौं तुव ओठ सुधा ससि पूरि ।। ४६०
(सह्यौ) कति अतिसं[4] उप्पम होइ ।
लसैं जलजात पैं षंजन दोइ ।।
अपुंन्हित सो गुण औरके और ।
सुगंध तिया नहिं चंपक ठौर[5] ।। ४६१
इकै भिद कांति कहावति और ।
लसैं तुव नैंननि[6] औरहि दौर[7] ।।
अजोगहि जोग सबंधति देषि ।
जलन्निधि छोटौ रु मीन बिसेषिं ।। ४६२
सयोकति जोगकौ कीजे अजोग ।
भए कुच सेन करैं सिव जोग ।।
मिले अंक्रमाति[8] जु कारण काज ।
लगे दृग नेह इकै संग साज ।। ४६३
सुनौं चपलाति सु चंचल भांति ।
पिया मिलिकै तनमैं न समांति[9] ।।
सयोकति पुंन्हति होइ तौ होइ[10] ।
सुधा तुव बैनसौ जोइ तौ जोइ ।। ४६४

---

४६०. १ ख. तुव है मिसि । २ ख. बांचि । ३ ख. न ता सम ।
४६१. ४ ख. अतिसय । ५ ख. चंपक खोर ।
४६२. ६ ख. नेंनन । ७ ओर हि दोरि ।
४६३. ८ अक्रमात ।
४६४. ९ ख. तन मों न समात । १० ग. होय तो होय ।

जहां बिपरीति अतितति गाय ।
मिलैं पहलैं सवतैं परी पाय ।।
कहै तुलियोग सु तीन सुरूप ।
लहौ क्रम तैं यह रूप अनूप[1] ।। ४६५

हितू अहितै पद एक प्रमांन ।
हित अरिकौं अति दीजत मांन ।।
इकै सब दैवहुकौं बिसरांम ।
बढैं रतिराजमैं कोकिल कांम ।। ४६६

गुणै समता बहु मैं जु लषाय ।
सिवारति तू वरमां तुव पाय ।।
सुदीपक बस्त[2] क्रिया सुबिचार ।
पिकै मधु पावक केकि उचार ।। ४६७

तहां[3] पद आबृति दीपक हौइ ।
दिंपै मुष[4] तीय दिपै ससि जोइ ।।
सु अर्थ जु आबृति[5] दीपक कीय ।
तक्यौं दिन औधि लष्यौ तब पीय ।। ४६८

पदारथ आवृति दीपक आहि ।
सखी तिय चैंन भयौ पिय चाहि[6] ।।
कहैं प्रति बरन[7] सु उप्पम ताहि ।
रहै इक अर्थ दुहू पद माहि ।। ४६९
हितू निज होइ कहै सिष बात ।
अरी समझावत छैं तुव गात ।।
दष्टांत[8] इहैं लषि लक्षिन नांम ।
लहै उपमां प्रतिबिंब सु तांम ।। ४७०

४६५. १ ख. रूप अरूप ।
४६७. २ ख. वस्तु ।
४६८. ३ ख. जहां । ४ ख, दियें मुख । ५ ख. आव्रत ।
४६९. ६ ख. पिक चाहि । ७ ख. प्रति वस्तु ।
४७०. ८ ख. द्रष्टांत ।

बनैं लघु पैं नहि ऊचके[1] साज ।
करै जुगनू कबै भांनके काज ।।
सुनौं कबि निद्रसनां त्रिय भेद ।
सुपोषक अंग दुहु बिन षेद ।। ४७१
सुहागनि और दुहागनि गाव ।
बिनां बरसैं रति पावस भाव ।।
सुनौं द्रसनांगुन और म कीन ।
करी गति कांमनिकी गहि लीन ।। ४७२
सुनिद्रसनां इक या बिधि पाइ ।
भलौ र[2] बुरौ फल कारज भाइ ।।
अनींकौ रु नीकौ सु कान्ह रु कंस ।
निद्रसन तीनकि असी प्रसंस ।। ४७३
अलंकृत यूं बितरेक कहेय ।
तहां[3] उपमां तैं भलौ उपमेय ।।
कहैं तन कुंदन सौ किमि[4] होइ ।
कठोर तहां न सुगंध समोइ ।। ४७४
सहौकति सो इक साथहि जांन ।
छुटचौ[5] संग मांनकै सौतिन मांन ।।
बिनौकति द्वै बिधि ह्वै जग मद्धि[6] ।
भलौ र बुरौ कछु अर्थतैं सिद्धि[7] ।। ४७५
भलेतैं भलौ सु बिनौकति गाव ।
लसै हसती संग फौज बनाव ।
बिनौकति सो फल बी[षी]नतैं षीन ।।
तिया अति उत्तम रोसतैं हीन । ४७६

---

४७१. १ ग. ऊंचके ।
४७३. २ ग. भलौ रु ।
४७४. ३ ख. जहाँ । ४ ख. किम ।
४७५. ५ क. छुट्यो ६ ख. मध्य । ७ ख. सिद्ध

समासउकत्ति तहां गुन श्लेष ।
दुरि[री] चपला इन भौंनमैं देष ॥
सुनौं सुपरिक्कर[1] लक्षिन सोइ ।
बिसेषण भाय लये तहं होइ ॥ ४७७
है मुष पंकज तेरौ बषांनि ।
भरचौ बहु बासनि फूलत जांनि ॥
परिकुर अंकुर औ अभिप्राय ।
न आयि बुलाये मिली अब आय ॥ ४७८
इकै पद अर्थं अनेक संलेष[2] ।
सु कुंज रहैं अलि मत्त बिसेष ॥
अन्यौकति[3] औरमैं औरकी उक्ति ।
करी पर भौंर कहा यह जुक्ति ॥ ४७९
प्रजायउकत्ति कहैं बिधि दोइ[4] ।
लहौं क्रमतें लक्षि लक्षिन जोइ ॥
प्रजाइ कहै कछु बिंग्य तै[5] बात ।
नयौ ससि सोहत रावरें गांत ॥ ४८०
प्रजाय सु दूजी कहैं मिस बैंन ।
चली उन कुंजके फूलनि लैंन ॥
सुब्याजसतुत्तिहि लक्षिन धारि ।
'बकी अघ'[6] दुष्ट दळे[ए] हरि तारि ॥ ४८१
सुब्याज निदालछिनां महि जोइ ।
मिले हरि तैसें मिलै नहि कोइ ॥
अछेप[7] कहै न कह्यौ चहै भाव ।
सुनौं इक बात कहौं नहि जाव ॥ ४८२

---

४७७. १ ख. सुपरिक्षर ।
४७९. २ ख. मंखेप । ३ ख. अन्योक्ति ।
४८०. ४ ख. विधि होई । ५ विगतै ।
४८१. ६ ख. यकी अघ ।
४८२. ७ ख. अछेय ।

नटै कहिकैं पुनि[1] आंछिप जांनि ।
भरे अपराध कहूं न बषांनि ॥
बिरोध सुभाव बिरोधहि[2] रीति ।
सुनीति अनीतिहि राजन[3] प्रीति ॥ ४८३
बिभावन कारिज कारन छांडि ।
बुलाये बिनांही मिले रस मांडि ॥
अपूरण पूरै बिभावन सोइ ।
करै[4] अबला बसि सिद्ध न जोइ ॥ ४८४
बिभांवन काज रुकै न सबंध ।
तिरैं तकि गंग गहे तम अंध ॥
बिभावन काज अकाज तैं होत ।
तुम्हैं तन सौतिकौ रूप उदोत ॥ ४८५
बिभावन कारण तैं नहि काज ।
सुमोहन नांम कुचालके साज ॥
बिभावन कारण काजतैं होत ।
लषौ[5] चष मीनतै बारि उदोत ॥ ४८६
बिसेष-उकत्ति अलंकृत गाय ।
सुकारण होइ पैं काज न[6] पाय ॥
लगें दृग बांन पै षाउ न आंय ।
भरे दृग नीर पै[7] प्यास न जांय ॥ ४८७
'अजोगमैं जोग'[8] असंभव मांनि ।
कहौ कब राज बभीषन पांनि ॥
असंगति कारण काजहि भेद ।
लगे दृगे सौतिसौं सौंतिकैं षेद ॥ ४८८

---

४८३. १ ख. पुन्य । २ विरोधह । ३ ख. राजत ।
४८४. ४ ग. करें ।
४८६. ५ ख. लखें । ग. लषै ।
४८७. ६ ख. कारज पाई । ७ ग. प्वै ।
४८८. ८ ख. अजोगतें जोग ।

असंगति ठौंर बिनां इक काज ।
कपोलमैं अंजन 'राजत साज'[1] ।।
असंगति औरतें और उपाय ।
जगे मुहि चाहि लगे सौंति पाय ।। ४८९
गन ै बिषमाय असंगहि संग ।
'कहां हरि बाल[2]' कहां गिरि ढंग ।।
सुनौं बिषमाक्र कारण भेद ।
लसैं अधरारुन[3] हासि सुपेद ।। ४९०
भले फलतें ह्वै बुरौ बिषमाय ।
बियोगमैं आगिन चंदन लाय ।।
तहां सम होइ समा तिहिं जोय ।
रमांपति साथ रमा रंग होय ।। ४९१
'समा पुनि काजमैं'[4] कारन पाय ।
जती जग दोष न लागत काय ।।
यकै[5] सम काजहि ह्वै बिन षेद ।
सु चाहत एक मिले चहु बेद ।। ४९२
फलै बिपरीति बिचित्रहि आय ।
तिया हित हेत परै पिय पाय ।।
कहौं अधिका तहं 'आधिक पाय'[6] ।
तिया-तन-रूप धरा न समाय ।। ४९३
बडी इक ठौर सु आधिक और ।
अच्यौ रिष[7] अंजुलि सिंध सजोर ।।
तहां अलपा अलपै तन कीन ।
पिया बिछुरैतें भई तिय छीन ।। ४९४

---

४८९. १ ख. राजन साज ।
४९० २ ख. कहीं हरि वाल । ३ ख. अपरारुण ।
४९२. ४ ख. सभा पुनि काजसे । ५ ख. इकें ।
४९३. ६ ख. साधिक पाय । ग. आधिक पाय ।
४९४. ७ ख. रच्ये रिष ।

अन्यौनि[1] अलंकृत नांम सुरूप[2] ।
निसा ससितैं ससितैं निस रूप ।।
बिसेष बिनां सु अधार[3] अधेय ।
रहै नभ ऊपरि धूहरि सेंय ।। ४९५
बिसेष 'सुसुक्षिम तैं'[4] बहु सिद्धि ।
रुकम्मनि-काज लही द्विज रिद्धि ।।
बिसेष सुबयस्त[5] अनेक ठां ऐनं ।
सुधा तिय ओठनि[6] नैननि बेंन ।। ४९६
सु औरतैं कारज और ब्याघात ।
समीर सुसीत जरावत गात ।।
सुगुंफ परंपर कारण पोष ।
बिषै करै पाप तजैं तिहि मोष ।। ४९७
इकावलि[7] पंकति क्रमतैं[8] आय ।
बितै दत ह्वै दत तै जस पाय ।।
इकावलि दीपक दीपक-माल ।
सबै हरिमैं हरि तो तन बाल ।। ४९८
अलंकृत सार सुसारहि सार ।
धरातैं ससी ससितैं मुष चार ।।
अनुक्रम जोग[9] जथा सषि रूप[10] ।
हरे गज दांमिनि चाल सुरूप ।। ४९९
प्रजाय अनेक सु एकहि ठौर ।
भरी 'रस आंषैं'[11] करी रिस और ।।
सु एक अनेकमैं और प्रजाय ।
बसे पिय नैंननि बैंननि आय ।। ५००

---

४९५. १ ख. अन्योन्य । २ ख. ग. सरूप । ३ ख. ग. आधार ।
४९६. ४ ख. सुक्षमते . ५ ख. वस्तु । ६ ख. ओढ़नि ।
४९८. ७ ख. इकाबिल । ग. एकावलि ! ८ ख. क्रुभ तैं ।
४९९. ९ ख. ग. योग । १० ख. ससि रूप ।
५००. ११ ख. रिस आंखें ।

परबृत्ति थोरौ दयें बहु पाय ।
गुनि दै असीस भए जगराय ।।
प्रसंषि सु[1] दूसरी ठौरमैं लीन ।
सुहाग सु सौतिनकौ तुव दीन ।। ५०१

इहै कै वहै बिकलप्पं कि रीति ।
मिलै यह कैं वह तौ बढै प्रीति ।।
समुच्चय काज अनेक कराय ।
डराय दुरै तुव सौति पराय ।। ५०२

समुच्चय 'एकमैं'[2] हौंहि अनेक ।
करैं क[बि] पंडित संग बिबेक ।
सुकारक दीप इकै बहु भाव ।
हसै तरसै सरसै करै चाव ।। ५०३

समाधिक कारन दूसरै[3] काजु ।
मिली तब औधि 'मिले पति आजु'[4] ।
सुकाबिरिथापति है इहिं साज ।
बंडौ भये कांम कहा लघु काज ।। ५०४

हत्यौ कपि ईस का रावन रंक ।
दयौ गज तौ कहा अंकुस संक ।
रु काइबिलिंग सु अर्थमैं हेत ।
जरै तन नाह्व लहै न संकेत ।। ५०५

अर्थांतरन्यास अलंकृत सोइ ।
बिसेष समानहि तैं दिढ होइ ।
'ब देषत मोहि लिए ब्रजराज ।
सु औरकी बात कहौं किंहि काज ।। ५०६

---

५०१. १ ख. असंखि सु ।

५०३. २ ख. एक समें ।

५०४. ३ ख. दूसरों । ४ ख. मिली पति आजु ।

अलंकृत होइ बिकस्सुर[1] सोइ।
बिसेष समांन विसेषहि होइ॥
सु तौहि लषैं हरि ह्वै हैं हजूरि।
ह्वै दांन तहां जस जांनि न दूरि॥ ५०७

सुप्रोढुउकत्ति[2] जु आधिक लेह।
लसै घन अंबर[3] दांमनि-देह॥
संभावन जौ इमि होइ त होइ।
जरावें [जो काम इहां सिद्ध होय]॥ ५०८

मिथ्या धिव सेवत[4] चंचल रीति।
थंभै गिर बाल ह्वै बालकी प्रीति॥
प्रहर्षण जत्न बिनां फल पाय।
सखी सु कहा[5] मिलि ए सुखदाय॥ ५०९

प्रहर्षण चाहैं तें आधिक आहि[6]।
चढयो कर पारस सोनेकी चाहि॥
प्रहर्षण वस्तु[7] उपायतें[8] पात।
भये 'सिद्धि साधिक सिद्धिकी घात'[9]॥ ५१०

विषाद सु ओरतें ओर उपाय।
तकें पर-ती निज तीय रिसाय॥
उल्हास धरै गुण ओगुण भांनि।
कहें बलिकौं 'हरि दै भुवन दांनि'[10]॥ ५११

---

५०७. १ ख. विकस्वर।

५०८. २ ख. सुप्रोढ़उकत्ति। ३ ख. घर अंबर।

१. टि.—कोष्ठांकित पद्यांश श्रीयुत् नाहटाजीसे प्राप्त ख. प्रतिसे लिया गया है।

२. टि.—छन्द संख्या ५०९ से ५१४ तकके छन्द [क] प्रतिमें नहीं हैं। यह ख. प्रतिसे लिये गये हैं।

५०९. ४ ग. सिवत। ५ ग. सुंषही।

५१०. ६ क. आई। ७ ग. वस्त। ८ ग. उपातें। ९ ग. सिधि साधि।

५११. १० हिरदै भुव दांनि।

अवग्या नही गुण औगुण लाय ।
मनें न तिया[1] परये हरि पाय ।।
अनुग्या गिणैं गुण दोष न जांनि ।
मिली पतितें अपराधनि मांनि ।। ५१२
अवगुण ह्वै गुणमें जह लेख ।
सुधा हित ओठ न[2] पीड़ विशेष ।।
मुद्रा निज अर्थमें अर्थ सु ऊठि ।
सुता वृषभानकी जारत रूठि ।। ५१३
रत्नावलि नांमके नाम अनंत ।
निशेष[3] निसापति है निसकंत ।।
तदगुन सो गुन औरहिं जोय ।
सु तो कर मुत्तिय मांनिक होय ।। ५१४
पतरुख दीजें गह्यो गुन टारि ।
धसैं जल पीत तजें सित बारि ।।
पतरुष क्योंहूं तजैं गुण नांही ।
लगी क्रम कालिमां धोए न जांहि ।। ५१५
अतद्गुनैं गुन नांहि गहाय ।
भय बिषसे[4] तन संकर पाय ।।
अनग्गुण[5] सो गुण लै सरसाय ।
हैं कंकन कुंदनतें अधिकाय ।। ५१६
सुमीलिति[6] ह्वै सममै सम जाय ।
हिये नहि कंचन-माल लषाय ।।
समांन समांन तें आधिक नांहि ।
लसै 'पग लाली न'[7] जावक मांहि ।। ५१७

---

५१२. १ ग. त्रिया ।
५१३. २ ग. वोठन ।
५१४. ३ ग. निसेस ।
५१६. ४ ख. भयो विषसे । ५ ख. अनगुण ।
५१७. ६ ख. सुमीलित । ७ ख. पग लागी न ।

यहै उनमीलिस[त]मैं भ्रम जाय ।
लगी तन कुंकुम बासतैं पाय ।।
समांन समांनमैं पावै बिंसेष ।
षुले मुष कौंल कहौं[1] अलि देष ।। ५१८
गुंछौ[ढ़ो]तर उत्तर[2] भावतैं होत ।
करी अलि छांडहुं कौल उदोत ।।
इकै रव पूछत उत्तर चित्र ।
मिलैं पति री कब री गुहि इत्र ।। ५१९
अलंकृत सुक्षिम[3] बात दुराय ।
लगे नष ता पर केसरि लाय ।।
पिहीत छिप्यौ प्रगटै कछु भाव ।
रुषै मुष हास सुमांन जनांव ।। ५२०
करै छल गोप सुब्याजौं-उकत्ति ।
न जावक भाल हैं बंदन मित्त ।।
गुढ़ोतर गूढ करैं उपदेस ।
सषी चलि कुंजके फूल सुदेस ।। ५२१
अत्यौकति गूढ सलेष प्रकास ।
सनेह ले आवति हौं तुव पास ।।
सुउक्तिक्रिया करि कर्म छिपाय ।
दुरांवन जावक लागत पाय ।। ५२२
लुकोक्तिलंकृति लोंकबिबादि ।
बसौं अनतें अलि लै हरि आदि ।।
छिकौक्ति जांनु[4] अलंकृत एहु ।
लुकोकति तां मधि अर्थ कहेहु[5] ।। ५२३

---

५१८. १ ख. कौं लहौं ।
५१९. २ ग. गुछोंतर ।
५२०. ३ ख. सुक्ष्म, ग. सूषिम ।
५२३. ४ ख. जानि । ग. जान । ५ ख. सुदे ।

लषैं ही करै सजनी बस बाल ।
सुनौं तिन नांम है मोहनलाल ।।
बक्रोकति जा महि अर्थ फिरांहि ।
फिरी सषि दौरि मिले हरि नांहि ।। ५२४
सुभाउ-उकत्ति सुं जानि सुभाव ।
सहै पुनि देत है सूरहि घाव ।।
रू भावकि भूत भवष्षित होइ ।
अगै हुतौ कांम सोई यह जोइ ।। ५२५
उदात तहां बहुं अर्थ उदोत ।
वसै जहां दांनी[1] तहा कबि होत ।।
इहै अति-उक्ति अतिसय जूप ।
पिया परसैं भइ कुंदन रूप ।। ५२६
निरुक्ति सुजोगतैं अर्थ लगाय ।
लगी हरि ध्यांन भई हरि भाय ।।
निषेद जु अर्थ जहां[2] प्रतिषेध ।
समीर न तीर करैं तन बेध ।। ५२७
सु है बिधि अर्थहि साधिए[3] फेरि ।
सु मोहन जौ मनमोहत हेरि[4] ।।
मिलै हित कारज कारण साथ ।
भयौ जस दांनकै देत हि हाथ ।। ५२८
क्रिया संग कारण कारज हेत ।
मिले सुष संपति तेरै हि देत ।।
इत्ती अरथा - अलंकार सुजांनि ।
कहौं सबदा अब नीकै[5] बषांनि ।। ५२९

५२६. १ ख. जहां दामिनी ।
५२७. २ ग. तहां ।
५२८. ३ ख. साधियै । ४ ख. मनमोहन हेरि ।
५२९. ५ ग. अति नीकें :

फिरैं बहु बर्न दुहूं बर आय।
अलंकृत छेक कहैं कबिराय।।
मिली सजनी रजनी महिं आंनि।
घटा मधि बीज[1] छंटासि बषांनि।। ५३०

बहू बर बर्न सु बृत्तिनुप्रास।
नरी किंनरी न सुरीं इनि[2] पास।।
बृत्या-अनुप्रास तैं[3] बृत्ति सु तीन।
भई सु कही कबिताई नवीन।। ५३१

सुमाधुर ह्वै उपनागरिं सोइ।
हसै हुलसै बिलसै पति जोइ।।
गनौं परुषा तहं वोज प्रकास।
हटै न घटै रपटैं भट जास।। ५३२

रु कोमला बर्न प्रकास प्रसाद।
अरौ न करौ न षरौ बकवाद[4]।।
अनूप्रस लाट उही पद जोइ।
जपै हरिकौं हरिकौ जब होइ।। ५३३

जमंक सुसब्द[5] वहै अर्थ और।
सु मोहन हैं मन-मोहन मोर।।
इते अलंकार पढै कबिराज।
लहै सुष संपति साज समाज।। ५३४

दोहा — नवरस पिंगल छंद कछु, अलंकार बहु रंग।
कबि पंडित हित समझि कैं[6], बरन्यौं नेहतरंग।। ५३५

---

५३०. १ ख. वीजु।
५३१. २ ख. सुरी इन। ३ ग. तै।
५३३. ४ ख. चकवाव।
५३४. ५ ख. जमंक र शब्द।
५३५. ६ ग. समझिहै।

दोहा – सतरहसै चौरासिया, नवमी तिथि ससिबार।
सुक्ल पक्षि[1] भादौं प्रगट, रच्यौ ग्रंथ सुषसार ॥ ५३६

इति श्रीनेहतरंगे रावराजा श्रीबुधसिंघ सुरचते अलंकार
निरुपणं नाम चतुरदशो तरंग ॥ १४ ॥

इति श्रीग्रंथ नेहतरंग संपूरण समाप्ताः ॥ श्री ॥
पढै सुणै त्यानैं श्रीराधाकृष्णजी सहाइ ॥
॥ शुभं भवत् ॥

संवत् १७८५ बर्षे मिती आषाढ़ बुदी ७ सोमवार पोथी लीषतं च जोसी
भोपती गढ बुंदी मध्ये बास्तव्यं ॥ पोथी लषि आबेर मध्ये ॥

श्रीकृष्ण परमात्मा ॥

॥ श्रीराम श्रीराम श्रीराम श्रीराम ॥

प्रति [ख] —इति श्री नेहतरंगे रावराजा श्री बुद्धसिंह सुरचिते
अलंकार निरूपणं नाम चतुर्दशो तरंग ॥ १४ ॥
इति श्री नेहतरंग सम्पूर्ण समाप्तम्।

संवत् १९०१ मिति जेष्ठ बदि १ लिखितमिदं पुस्तक।

॥ शभुं भवतु ॥

प्रति [ग] —इति श्री नेहतरंग ग्रंथ संपूर्ण समाप्त
सर्प दोहा छंद कवित्त ५३६ ॥ श्लोक संख्या १४८९ ॥ श्रीरस्तु
लीषतं बसंतराय साभर मध्ये संवत् १८०२ मिती काती शुदि ४
बृहस्पतिवारे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

---

५३६. १ ग. शुक्ल पक्ष।

परिशिष्ट — १

छन्दानुक्रमणिका

[अ]

आ]

[ष] ख

[ग]

[घ]

[ध]

[न]

क्रम संख्या	पंक्ति	छं सं.	पृ. सं.
२५९	नांही बगुपांति यह कौडावलि देषियत, गरजत नांही बाजै सांकरनि झेले हैं	३८३	७३
२६०	न्हांन सवै जमुंना जलकौं, ब्रजके नर नारी हिये उमगे हैं	३७८	७२
२६१	निकसत हसत निसंक जह, होत सिथल सब अंग	३६७	७०
२६२	निर्वेद, गलांनि, संका, आलस, दय, निमोह, श्रम, मद, कोह, मति, सुमृति, बषानिये	३१५	५९–६०
२६३	निरुक्ति सुजोगतै अर्थ लगाय	५२७	९८
२६४	नीलबरन बिभत्सरस, अति निंदामय देह	३८५	७३
२६५	नेवर जराऊ मनि जेहरी बिसरि दोऊ, पाइ अरबिंदन पै बंदिनकौ धरिबौ	३४१	६४
२६६	नेह-रूप अभिमांन सौं, तहां अनादर होइ	३३४	६३
२६७	नेह समुद्रकी थाह अथागन, लेषौ चहै सुतौ क्यौं निबहै है	४०७	७७
२६८	नैंक न लाज समाजकी, महा मानियत कांनि	३१९	६०
२६९	नननि अंजनकै धरिबै, धरिबै भृकुटीनकी जूटै निकाई	३२०	६०
२७०	नैंननि- बैंननि सैन बिधि, उपजत हियें हुलास	३५२	६७
२७१	नौंतेकै मन्दिर मिली, नंदनंदनसौं जूटि	१२६	२६

[प]

क्रम संख्या	पंक्ति	छं सं.	पृ. सं.
२७२	पतरुष दीजें गह्यो गुन टारि	५१५	९६
२७३	पतिकौं साअपराध लषि, कहै जु कछुक जताय	६३	१४
२७४	पति बिदेस जाको बसै, निसदिन नींद बिहाय	९४	२०
२७५	पत्री दोइ प्रकारकी, बरनत है कबिराज	२९४	५६
२७६	पदारथ आवृति दीपक आहि	४६९	८८
२७७	परत पुंज अति बिरहकै, तम-निकुंज घहराति	१४०	२८
२७८	परबृत्ति थोरी दयें बहु पाय	५०१	९४
२७९	परम भांवतो मित्र तह, सुपनें दरसै आय	३५	८
२८०	परि अताप किरनें प्रकट, दाधे तरु सरुजात	४१७	७९
२८१	पहली सोहित सहज उर, अति बिचित्र सम प्रीति	१३	३
२८२	पहिलें तजि मांन मनाय रही, परि पाय कितीक कियें उपषांनें	३४७	६६
२८३	प्रगलभ-बचनां जांनिये, जाकी असी रीति	५६	१२
२८४	प्रजाय अनेक सु एकहि ठौर	५००	९३
२८५	प्रजायउकत्ति कहें बिधि दोइ	४८०	९०
२८६	प्रजाय सु दूजी कहें मिस बैंन	४८१	९०

[फ]

क्रम संख्या	पंक्ति	छं. सं.	पृ. सं.
३१९	फूले सर कवल तडाग उडि मिले भौंर, ह्वै चहुं ओर चौर झौंर झुकि रहिये	२९९	५७
	[व]		
३२०	बंक-मयंक नषछदसौ षुलि, तारन-हारनकी छबि छांई	१८३	३५
३२१	बकी-बकीसी रहत निसि, थकी-थकीसी गेह	१६२	३१
३२२	बडी इक ठौर सु आधिक और	४९४	९२
३२३	बन-उपवन उद्दीप जे, चित-मति यौं दरसाय	२७२	५१
३२४	बनैं लघु पैं नहि ऊचके साज	४७१	८९
३२५	बहुत छंद कृत नागके, पिंगल मत बिसतारि	४२७	८१
३२६	बहुरि बिप्रलवधा अवर, अभिसारिका अनूप	८७	१९
३२७	बहू बर बर्न सु वृत्तिनुप्रास	५३१	९९
३२८	बात चलावत हौ तुम ज्यौं ज्यौं, वं बातनि ही मधि मांन मलै हैं	४०५	७७
३२९	बदन-चंद षुलि चंद्रिका, दृग-सरोज सम आज	४२१	७९
३३०	बाढ़ी निसा बहरैं छहरैं, ससि छूटि कलारस अमृत भीनौं	४२४	८०
३३१	बात गात मति जासमें, अति विचित्र गति होय	२२	५
३३२	बनिकतें बनिकें सजनी, चलिए वनसौं मिलिए बलि जांही	१८६	३५
३३३	बारनकै भार लगि लागे लंक पार मिलि, चंदमुष-आंननपें अलकें सुहात हैं	३४४	६५
३३४	बाहरितें घरमें फिरि बाहरि, आतुरता अति ही उरझा (जा) गी	३२४	६१
३३५	ब्याधि-भुवन अैसें मिली, नंदनंदनसौं जूटि	१२०	२५
३३६	बिछुरत प्रीतम-प्रिया जहं, बिप्रलंभ-सिंगार	३०१	५८
३३७	बिबधि-कलांन केलि कीनी रसभीनी अति रंग-रस-सनी सब रजनी बितै रही	६२	१३–१४
३३८	बिभांवन काज रुकै न सवंय	४८५	९१
३३९	बिभावन कारण तें नहि काज	४८६	९१
३४०	बिभावन कारिज कारन छांडि	४८४	९१
३४१	बिनां भांवती बात लषि, दुलवै तिनकौं आय	२०३	३८
३४२	बिरह-बिकल अकुलाइकें, लिषि पठवत कछु बात	२९५	५६
३४३	बिसेष-उकत्ति अलंकृत गाय	४८७	९१
३४४	बिसेष सुसुक्षिमतें बहु सिद्धि	४९६	९३
३४५	बीर बीच उतसाह है, भयहि भयानक बास	३११	५९

[भ]

[म]

व

[श्रु]

[ष]

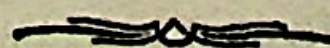
क्रम संख्या	पंक्ति	छं. सं.	पृ. सं.
	[स]		
४५८	सकोमला वर्न प्रकास प्रसाद	५३३	९९
४५९	सछ्या बिनय मनावनौं, करै सिंगार मिलाइ	१८३	३५
४६०	सजि सिंगार जो मिलनकौं, जावै पाय चलाय	१०२	२२
४६१	सजें सिंगार दुहूंनके, सोरह बिबधि बनाइ	१९४	३७
४६२	सब जगमें सब जननकौं, सुषदायक सुभनंद	४२३	८०
४६३	सबतें चित्त उदास ह्वै, एक मांझ ह्वै लीन	३९१	७५
४६४	सगन आठ कीजे जहां, जौइस बरन बनात	४३३	८२
४६५	सतरहसें चौरासिया, नवमी तिथि ससिबार	५३६	१००
४६६	समांन न और समांन न जोइ	४५३	८५
४६७	समाधिक कारन दूसरै काजु	५०४	९४
४६८	समा पुनि काजमें कारन पाय	४९२	९२
४६९	समासउकत्ति तहां गुन श्लेष	४७७	९०
४७०	समुच्चय एकमै होंहि अनेक	५०३	९४
४७१	सरदके चन्द्रमासौ राजत बदन-चंद छूटे केसपास भारे लंक बिसतारे हैं	२५	६
४७२	सयोकति जोगको कीजे अजोग	४६३	८७
४७३	सहोकति सो इक साथहि जांन	४७५	८९
४७४	(सह्यो) कति अतिसै उप्पम होइ	४६१	८७
४७५	सांम दांन भेद रु प्रनत, और उपेछा होइ	२३०	४३
४७६	सांझहीसौं ब्रजबालनसौं, कथा-जालनमें रजनी दै अझूटी	१०९	२३
४७७	साची कहो जाकी मांनत सौंहसो, कौंनके नेह रहे सरसे हौ	८३	१८
४७८	सागर मांझ तरंग ज्यौं, सबै रसनिमै होत	३१४	५९
४७९	साजें सिंगार सषीनकी संगति, देषी हुती वृषभांनदुलारी	३३६	६३
४८०	सात भगन गुरु होइ जह, रचौ मात बत्तीस	४३१	८१
४८१	साथ सषीनमें षेलिबे कौंन, मिलें मन भूलि रचै नहि कोई	३२६	६१–६२
४८२	सार सबै जगके सुषदायक, लायक है जदुराय अकेले	३५७	६८
४८३	सालत रसाल मालतीकी माल लालन कटीली बनलतांनकै लालच लटे रहो	५७	१२–१३
४८४	सासके लंगर टूटतसी, वृजनारि त्यौं छूटि मिल्यो अभिलाषै	१६५	३२
४८५	स्यामबरन दुति देहकी, अति-भयमय दरसात	३८२	७३
४८६	स्यांम लसें घन-अंबरसे, अलकें घुरवांनिहूंसी अवधारे	१३७	२७
४८७	स्यांम-सरीर लसै पट-पीत, मनौं घन-दामनि रूप भयौ है	१९६	३७
४८८	सीष देत कछु समुझिकै, दंपति हिय सुष पाय	१८५	३५



परिशिष्ट – २

सहायक ग्रन्थों की सूची

१. ईश्वरविलास—श्रीकृष्ण भट्ट, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।
२. कविप्रिया—केशव, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
३. डिंगल कोश—श्री नारायणसिंह भाटी, राजस्थानी शोध-संस्थान, जोधपुर।
४. बूंदी राज्य का इतिहास—श्री जगदीशसिंह गेहलोत, हिन्दी साहित्य मंदिर, जोधपुर।
५. भारतीय काव्य-शास्त्र की भूमिका—डॉ० नगेन्द्र, ओरियेंटल बुक डिपो, दिल्ली।
६. रसिक प्रिया—केशव, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
७. राजपूताने का इतिहास—डॉ० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
८. राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार—हिन्दी साहित्य परिषद, जयपुर।
९. राजस्थान का पिंगल साहित्य—डॉ० मोतीलाल मेनारिया, हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर।
१०. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज—भाग १-४, राजस्थान विद्यापीठ शोध-संस्थान, उदयपुर।
११. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० मोतीलाल मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद।
१२. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, आधुनिक पुस्तक भवन, ३०-३१, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता ७।
१३. वंशभास्कर—सूर्यमल मिश्रण, प्रताप प्रेस, जोधपुर।
१४. वीर विनोद—कविराजा श्यामलदास, सरस्वती भवन, उदयपुर।
१५. हिन्दी साहित्य कोश—ज्ञान-मण्डल, बनारस।
१६. हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१७. हिंदी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१८. हिन्दी साहित्य की भूमिका—हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।
१९. Annals and Antiquities of Rajasthan, James Tod., Routledge & Kegan Paul Ltd., London.



राजस्थान पुरातन ग्रन्थ-माला

प्रधान सम्पादक–पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य

प्रकाशित ग्रन्थ

१. संस्कृत

१. प्रमाणमंजरी, तार्किकचूड़ामणि सर्वदेवाचार्यकृत, सम्पादक – मीमांसान्यायकेसरी पं० पट्टाभिरामशास्त्री, विद्यासागर। मूल्य–६.००

२. यन्त्रराजरचना, महाराजा सवाईजयसिंह-कारित। सम्पादक–स्व० पं० केदारनाथ ज्योतिर्विद्, जयपुर। मूल्य–१.७५

३. महर्षिकुलवैभवम्, स्व० पं० मधुसूदन ओझाप्रणीत भाग १, सम्पादक–म०म० पं० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी। मूल्य–१०.७५

४. महर्षिकुलवैभवम्, स्व० पं० मधुसुदन ओझा प्रणित भाग २, मूलमात्रम् सम्पादक–पं० श्री प्रद्युम्न ओझा। मूल्य–४.००

५. तर्कसंग्रह, अन्नंभट्टकृत, सम्पादक–डॉ. जितेन्द्र जेटली, एम.ए., पी-एच. डी., मूल्य–३.००

६. कारकसंबंधोद्योत, पं० रभसनन्दीकृत, सम्पादक–डॉ० हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी.। मूल्य–१.७५

७. वृत्तिदीपिका, मौनिकृष्णभट्टकृत, सम्पादक–स्व.पं. पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी, साहित्याचार्य। मूल्य–२.००

८. शब्दरत्नप्रदीप, अज्ञातकर्तृक, सम्पादक–डॉ. हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी.। मूल्य–२.००

९. कृष्णगीति, कवि सोमनाथविरचित, सम्पादिका–डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्। मूल्य–१.७५

१०. नृत्तसंग्रह, अज्ञातकर्तृक, सम्पादिका–डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्। मूल्य–१.७५.

११. शृङ्गारहारावली, श्रीहर्षकविरचित, सम्पादिका–डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच.डी., डी.लिट्। मूल्य–२.७५

१२. राजविनोद महाकाव्य, महाकवि उदयराजप्रणीत, सम्पादक–पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए., उपसञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य–२.२५

१३. चक्रपाणिविजय महाकाव्य, भट्टलक्ष्मीधरविरचित, सम्पादक–केशवराम काशीराम शास्त्री मूल्य–३.५०

१४. नृत्यरत्नकोश (प्रथम भाग), महाराणा कुम्भकर्णकृत, सम्पादक–प्रो. रसिकलाल छोटालाल पारिख तथा डॉ० प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्। मूल्य–३.७५

१५. उक्तिरत्नाकर, साधुसुन्दरगणिविरचित, सम्पादक–पुरातत्त्वाचार्य श्रीजिनविजयमुनि, सम्मान्य संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य–४.७५

१६. दुर्गापुष्पाञ्जलि, म०म० पं० दुर्गाप्रसादद्विवेदिकृत, सम्पादक–पं० श्रीगङ्गाधर द्विवेदी, साहित्याचार्य। मूल्य–४.२५

१७ कर्णकुतूहल, महाकवि भोलानाथविरचित, सम्पादक–पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए., उप-संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। इन्हीं कविवर की अपर कृति श्रीकृष्णलीलामृतसहित। मूल्य–१.५०

१८. ईश्वरविलासमहाकाव्यम्, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टविरचित, सम्पादक–भट्ट श्रीमथुरानाथ शास्त्री, साहित्याचार्य, जयपुर। मूल्य–११.५

१९. रसदीर्घिका, कविविद्यारामप्रणीत, सम्पादक–पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम.ए. उपसंचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य–२.००

२०. पद्यमुक्तावली, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टविरचित, सम्पादक–भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, साहित्याचार्य। मूल्य–४.००

२१. काव्यप्रकाशसंकेत, भाग १ भट्टसोमेश्वरकृत, सम्पादक–श्रीरसिकलाल छो० पारीख, मूल्य–१२.००

२२. " भाग २ " " मूल्य–८.२५

२३. वस्तुरत्नकोष, अज्ञातकर्तृक, सम्पादक–डॉ० प्रियबाला शाह। मूल्य–४.००

२४. दशकण्ठवधम्, पं० दुर्गाप्रसादद्विवेदिकृत, सम्पादक–पं० श्रीगङ्गाधर द्विवेदी। मूल्य–४.००

२५. श्री भुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्, सभाष्य, पृथ्वीधराचार्यविरचित, कवि पद्मनाभकृत, भाष्य-सहित पूजापञ्चाङ्गादिसंवलित। सम्पादक–पं. श्रीगोपालनारायण बहुरा। मूल्य–३.७५

२६. रत्नपरीक्षादि सप्त ग्रन्थ संग्रह, ठक्कुर फेरू विरचित, संशोधक–पद्म श्री मुनि जिनविजयजी। मूल्य–६.२५

राजस्थानी और हिन्दी

२७. कान्हडदेप्रबन्ध, महाकवि पद्मनाभविरचित, सम्पादक–प्रो० के.बी. व्यास, एम. ए.,। मूल्य–१२.२५

२८. क्यामखां-रासा, कविवर जान-रचित, सम्पादक–डॉ. दशरथ शर्मा और श्रीअगरचन्द नाहटा। मूल्य–४.७५

२९. लावा-रासा, चारण कविया गोपालदानविरचित, सम्पादक–श्रीमहताबचन्दखारैड़। मूल्य–३.७५

३०. वांकीदासरी ख्यात, कविवर वांकीदासरचित, सम्पादक–श्रीनरोत्तमदास स्वामी, एम. ए.। मूल्य–५.५०

३१. राजस्थानी साहित्यसंग्रह, भाग १, सम्पादक–श्रीनरोत्तम स्वामी, एम.ए.। मूल्य–२.२५

३२. राजस्थानी साहित्यसंग्रह, भाग २, सम्पादक–श्रीपुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम. ए., साहित्यरत्न। मूल्य–२.५०

३३. कवीन्द्र कल्पलता, कवीन्द्राचार्य सरस्वतीविरचित, सम्पादिका–श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडवत। मूल्य–२.००

३४. जुगलविलासा, महाराज पृथ्वीसिंहकृत, सम्पादिका–श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत। मूल्य–१.७५

३५. भगतमाळ, ब्रह्मदासजी चारणकृत, सम्पादक–श्री उदैराजजी उज्ज्वल। मूल्य–१.७५

३६. राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिरके हस्तलिखित ग्रंथोंकी सूची, भाग १। मूल्य–७.५०

३७. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठानके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूची, भाग २। मूल्य–१२.००

३८. मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग १, मुंहता नैणसीकृत, सम्पादक–श्रीबद्रीप्रसाद साकरिया। मूल्य–८.५०

३९. रघुवरजसप्रकास, किसनाजीआढाकृत, सम्पादक–श्री सीताराम लाळस। मूल्य–८.२५

४० राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग २ सम्पादक–मुनि श्रीजिनविजय। मूल्य–४.५०

४१. राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, भाग २—सम्पादक–श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम.ए., साहित्यरत्न मूल्य–२.७५

४२. वीरवांण, ढाढ़ी बादरकृत, सम्पादिका–श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत। मूल्य–४.५०

४३. स्व० पुरोहित हरिनारायणजी विद्याभूषण ग्रन्थ संग्रह सूची, सम्पादक–श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए. और श्रीलक्ष्मीनारायण गोस्वामी दीक्षित। मूल्य–६.२५

४४. सूरजप्रकास, भाग १–कविया करणीदानजी कृत, सम्पादक–श्री सीताराम लाळस। मूल्य–८.००

४५. नेहतरंग, रावराजा बुधसिंह कृत—सम्पादक–श्री रामप्रसाद दाधीच एम.ए. मूल्य–४.००

प्रेसों में छप रहे ग्रंथ

संस्कृत

१. शकुनप्रदीप, लावण्यशर्मरचित, सम्पादक–मुनि श्रीजिनविजय ।
२. त्रिपुराभारतीलघुस्तव, धर्माचार्यप्रणीत, सम्पादक–मुनि श्रीजिनविजय।
३. करुणामृतप्रपा, भट्ट सोमेश्वरविनिर्मित, सम्पा०–मुनि श्रीजिनविजय ।
४. बालशिक्षाव्याकरण, ठक्कुर संग्रामसिंहरचित, सम्पा०–मुनि श्रीजिनविजय ।
५. पदार्थरत्नमंजूषा, पं० कृष्णमिश्रविरचित, सम्पा०–मुनि श्रीजिनविजय ।
६. वसन्तविलास फागु, अज्ञातकर्तृक सम्पा०–श्री एम. सी. मोदी ।
७. नन्दोपाख्यान, अज्ञातकर्तृक, सम्पा०-श्री बी.जे. सांडेसरा ।
८. चान्द्रव्याकरण, आचार्य चन्द्रगोमिविरचित, सम्पा०–श्री बी. डी. दोशी ।
९. वृत्तजातिसमुच्चय, कविविरहाङ्करचित, सम्पा०–श्री एच. डी. वेलणकर ।
१०. कविदर्पण, अज्ञातकर्तृक ,, ,, ,,
११. स्वयंभूछन्द, कविस्वयंभूरचित ,, ,, ,,
१२. प्राकृतानन्द, रघुनाथकविरचित, सम्पा०–मुनि श्री जिनविजय ।
१३. कविकौस्तुभ, पं० रघुनाथरचित, ,, श्री एम. एन. गोरी ।
१४. एकाक्षर नाममाला—सम्पादक–मुनि श्री रमणीकविजयजी ।
१५. नृत्यरत्नकोश, भाग २, महाराणा कुंभकर्णप्रणीत, सम्पा०–डॉ. प्रियबाला शाह
१६. इन्द्रप्रस्थप्रबन्ध, सम्पा०–डॉ. श्रीदशरथ शर्मा ।
१७. हमीरमहाकाव्यम्, नयचन्द्रसूरिकृत, सम्पा०–मुनि श्रीजिनविजयजी ।
१८. स्थूलिभद्रकाकादि, सम्पा०–डॉ० आत्माराम जाजोदिया ।
१९. वासवदत्ता, सुबन्धुकृत, सम्पा०–डॉ० जयदेव मोहनलाल शुक्ल ।
२०. घटखर्परादि पंचलघुकाव्यानि ,, पं० अमृतलाल मोहनलाल ।
२१. भुवनदीपक, यावनाचार्यकृत, सम्पा०–पं० श्रीपुरुषोत्तमभट्ट ।
२२. वृत्तमुक्तावली, श्रीकृष्ण भट्ट गुम्फित, सम्पा० पं० श्री मथुरानाथ भट्ट

राजस्थानी और हिन्दी

२३. मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग २, मुंहता नैणसीकृत, सम्पा०–श्रीबद्रीप्रसाद साकरिया ।
२४. गोरा बादल पदमिणी चऊपई, कवि हेमरतनकृत ,, श्रीउदयसिंह भटनागर ।
२५. राजस्थानमें संस्कृत साहित्यकी खोज, एस. आर. भाण्डारकर, हिन्दीअनुवादक–श्रीब्रह्मदत्त त्रिवेदी ।
२६. राठौडांरी वंशावली, सम्पा०–मुनि श्रीजिनविजय ।
२७. सचित्र राजस्थानी भाषासाहित्यग्रन्थसूची, सम्पादक–मुनिश्रीजिनविजय ।
२८. मीरां-बृहत्-पदावली, स्व० पुरोहित हरिनारायणजी विद्याभूषण द्वारा संकलित, सम्पा०–मुनि श्रीजिनविजय
२९. राजस्थानी साहित्यसंग्रह, भाग ३, संपादक–श्रीलक्ष्मीनारायण गोस्वामी ।
३०. सूरजप्रकास, भाग २, कविया करणीदानकृत, सम्पा०–श्रीसीताराम लाळस ।
३१. सूरजप्रकाश, भाग ३, कविया करणीदानकृत सम्पा०–श्रीसीताराम लाळस ।
३२. मत्स्य प्रदेश की हिन्दी-साहित्य को देन—डॉ० मोतीलाल गुप्त ।
३३. रुक्मिणी-हरण, सांयांजी झूला कृत, सम्पा० श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया ।

विशेष–पुस्तक-विक्रेताओं को २५% कमीशन दिया जाता है ।

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रकाशित ग्रन्थ

संस्कृतभाषाग्रन्थ—१. प्रमाणमंजरी—तार्किकचूड़ामणि सर्वदेवाचार्य, मूल्य ६.०० । २. यन्त्रराज रचना—महाराजा सवाई जयसिंह, मूल्य १.७५ । ३. महर्षिकुलवैभवम्—स्व० श्री मधुसूदन ओझा, मूल्य १०.७५ । ४. तर्कसंग्रह—पं० क्षमाकल्याण, मूल्य ३.००० । ५. कारकसम्बन्धोद्योत—पं० रभसनन्दि, मूल्य १.७५ । ६. वृत्तिदीपिका—पं० मौनिकृष्ण मूल्य २.०० । ७. शब्दरत्नप्रदीप, मूल्य २.०० । ८. कृष्णगीति—कवि सोमनाथ, मूल्य १ ७५ ९. शृङ्गारहारावली—हर्षकवि, मूल्य २.७५ । १०. चक्रपाणिविजयमहाकाव्य—पं० लक्ष्मीधरभट्ट, मूल्य ३.५० । ११. राजविनोद—कवि उदयराज, मूल्य २.२५ । १२. नृत्तसंग्रह, मूल्य १.७५ । १३. नृत्यरत्नकोश, प्रथम भाग—महाराणा कुम्भकर्ण, मूल्य ३.७५ । १४. उक्तिरत्नाकर—पं० साधुसुन्दरगणि, मूल्य ४.७५ । १५ दुर्गापुष्पाञ्जलि—पं० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी, मूल्य ४.२५ । १६. कर्णकुतूहल तथा कृष्णलीलामृत—भोलानाथ, मूल्य १.५० । १७. ईश्वरविलास महाकाव्य—श्रीकृष्ण भट्ट, मूल्य ११.५० । १८. पद्यमुक्तावली—कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्ट, मूल्य ४ ०० । १९. रसदीर्घिका—विद्याराम भट्ट, मूल्य २.०० । २०. काव्यप्रकाशसङ्केत-भट्ट सोमेश्वर, भाग १, मूल्य १२.०० । २१. भाग २, मूल्य ८.२५ । २२. वस्तुरत्नकोश, अज्ञातकर्तृक, मूल्य ४.०० । २३ दशकण्ठवधम्—पं. दुर्गाप्रसाद द्विवेदी । मूल्य ४.०० । २४. श्री भुवनेश्वरीमहास्तोत्रम् सभाष्य, पृथ्वीधराचार्य विरचित, कवि पद्मनाभकृत भाष्य सहित, मूल्य ३.७५ । २५. रत्नपरीक्षादि सप्त ग्रन्थ-संग्रह, ठक्कुर फेरू, मूल्य ६.२५

राजस्थानी और हिन्दी भाषा ग्रन्थ—१. कान्हडदे प्रबन्ध—कवि पद्मनाभ, मूल्य १२.२५ । २. क्यामखांरासा—कवि जान, मूल्य ४.७५ । ३. लावारासा—गोपालदान, मूल्य ३.७५ । ४. वांकीदासरी ख्यात—महाकवि वांकीदास, मूल्य ५.५० । ५. राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग १, मूल्य २.२५ । ६. राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग २, मूल्य २ ७५ । ७. जुगलविलास—कवि पीथल, मूल्य १.७५ । ८. कवीन्द्र कल्पलता—कवीन्द्राचार्य, मूल्य २.०० । ९. भगतमाळ—चारण ब्रह्मदासजी, मूल्य १.७५ । १०. राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिरके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूची, भाग १, मूल्य ७.५० । ११. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, भाग २, मूल्य १२.०० । १२. मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग १, मूल्य ८.५० न.प. । १३. रघुवरजसप्रकास, किसनाजी आढ़ा, मूल्य ८.२५ न पै. । १४. राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग १, मूल्य ४.५० । १५. राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची भाग २, मूल्य २.७५ । १६. वीरवांण, ढाढ़ी बादर कृत, मूल्य ४.५० । १७. विद्याभूषण ग्रन्थ संग्रह सूची मूल्य ६.२५ । १८. सूरजप्रकास भाग १, कविया करणीदानजी, मूल्य ८.०० । १९. नेहतरंग, रावराजा बुधसिंह, मूल्य ४.०० ।

प्रेसोंमें छप रहे ग्रन्थ

संस्कृत-भाषा-ग्रन्थ—१. त्रिपुराभारतीलघुस्तव—लघुपंडित । २. शकुनप्रदीप—लावण्यशर्मा । ३. करुणामृतप्रपा—ठक्कुर सोमेश्वर । ४. बालशिक्षा व्याकरण—ठक्कुर संग्रामसिंह ५. पदार्थरत्नमञ्जूषा—पं० कृष्णमिश्र । ६. वसन्त-विलास फागु । ७. नृत्यरत्नकोश भाग २ । ८. नन्दोपाख्यान । ९. चान्द्रव्याकरण । १०. स्वयंभूछंद—स्वयंभू कवि । ११. प्राकृतानंद—कवि रघुनाथ । १२. मुग्धाववोध आदि औक्तिक-संग्रह । १३. कविकौस्तुभ—पं० रघुनाथ मनोहर । १४. वृत्तजातिसमुच्चय—कवि विरहाङ्क । १५. इन्द्रप्रस्थप्रबन्ध । १६. हम्मीरमहाकाव्यम्—नयचन्द्रसूरि । १७. एकाक्षर नाम माला । १८. स्थूलिभद्रकाकादि । १९. वासवदत्ता-सुबन्धु । २०. घटखर्परादि । २१. भुवनदीपक-यावनाचार्य । २२. वृत्तमुक्तावली श्रीकृष्णभट्ट ।

राजस्थानी और हिन्दीभाषा ग्रन्थ—१. मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग २—मुंहता नैणसी । २. गोरावादल पदमिणी चऊपई—कवि हेमरतन । ३. चंद्रवंशावली—कवि मोतीराम । ४ सुजान संवत—कवि उदयराम । ५. राजस्थानी दूहा संग्रह । ६. राजस्थान में संस्कृत साहित्य की खोज-भण्डारकर । ७ राठोड़ांरी वंशावली । ८. सचित्र राजस्थानी भाषा-साहित्य ग्रंथ सूची । ९. मीरां बृहद पदावली १०. राजस्थानी साहित्य-संग्रह, भाग ३ । ११. सूरजप्रकास भाग २, कविया करणीदान । १२. मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन, डॉ. मोतीलाल गुप्त । १३. रुक्मणी हरण—सांयांजी झूला ।